

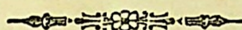
Khohi Lone
Noora Bont

308

॥ श्रीः ॥

अष्टावक्रगीता.

श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचिता ।



पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादनिवासिभारद्वाजगोत्रोद्भव
भोलानाथात्मजपण्डितरामस्वरूपकृत,
सान्वय भाषाटीकासमेता ।



सेयम्

खेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

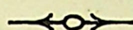
मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशते ।

संवत् १९६०, शके १८२५.

प्रस्तावना.



आजकल जिधर तिधर ब्रह्मविषयक चर्चा होती दीखती है,–जिस तिसके मुखमें " अहं ब्रह्म–नेह नानास्ति किंचन"–यह ध्वनि निकलकर संसारभरमें छारही है. यह यथार्थ विचार सत्य है. परंतु केवल शुकपाठके सदृश लोक बोलते हैं इससे अपनेभी बोलते रहना, इतनेसे कुछ हाथ नहीं लगेगा न कोई ब्रह्मवेत्ता कहता है कि, मैं ब्रह्म दीखताहूँ और न कोई मैं ब्रह्मको देखताहूं ऐसा कहनेवाला ब्रह्मको जान सकताहै. इसमें ईशावास्योपनिषद् प्रमाण है इसीसे "कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव" यह महात्माओंकी उक्ति बनी है.–अस्तु ।

परमतत्त्वका ज्ञान विना शास्त्र और ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुके उपदेशके विना किसीकोभी नहीं होता है. इसवास्ते परमोपकारक महर्षिजनोंने अध्यात्मविद्योपदेशके अर्थ अनेक प्रकारके वेदांतग्रंथ निर्माण करके परमतत्त्वको प्रकट किया है. उन ऋषियोंमें अग्रगण्य **श्रीअष्टावक्र** महर्षिजीने राजा जनकजीके प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश किया वह **"अष्टावक्रगीता"** इस नामसे ग्रंथरूप होकर प्रसिद्ध हुआ.

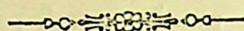
यह "अष्टावक्रगीता" ग्रंथ ब्रह्मविद्यामें अतिमान्य है. इसका लाभ सर्व लोकोंको होनेके वास्ते हमने मुरादाबादनिवासी पंडित श्रीरामस्वरूपजीसे इसकी सरल सुबोध सान्वय भाषाटीका बनवाय निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानामें छपाके प्रसिद्ध किया.

सर्व सज्जन ब्रह्मविद्याभिलाषियोंसे प्रार्थना है कि, इस ग्रंथको संग्रह करके इसमें कहेहुए ब्रह्मोपदेशको जानकर इस भवके तरनेका उपाय निश्चित करके इस जन्मका सार्थक करैंगे. और उक्त पंडितजीके परिश्रमको सफल करैंगे.

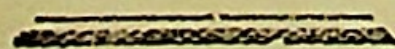
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष–मुंबई.

श्रीः ।

अथाष्टावक्रगीताप्रकरणानुक्रमणिकाप्रारम्भः ।



इत्यष्टावक्रगीता प्रकरणानुक्रमणिका संपूर्णा ।



॥ श्रीः ॥

अथ अष्टावक्रगीता.

सान्वय-भाषाटीकासहिता ।



सृष्टिस्थित्यन्तकर्त्तारो ब्रह्माद्यायदनुग्रहात् । तं नुमः सर्वगं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ १ ॥ शिवां नौमि शिवं चापि शिवसूनू पुनः पुनः । शिवङ्कुर्वन्तु सर्वेऽपि सर्वदा सदनुग्रहाः ॥ २ ॥ यन्मनश्चन्द्रमा भाति यच्चक्षुर्भाति भास्करः । यद्विभूतिर्जगत्सर्वं तं कृष्णं प्रणमाम्यहम् ॥ ३ ॥ पण्डितस्वामि श्रीराममिश्रशास्त्रिगुरूनहम् । नत्वाष्टावक्रगीतायाश्चन्द्रिकां रचये शुभाम् ॥ ४ ॥

श्रीयुत पूज्यपाद पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्यो गुरुभ्योनमः ॥ विदधातु शिवंशिवः ॥ ओ ३ म् ॥

एक समय मिथिला नगरीके स्वामी राजा जनकके चित्तमें पूर्वपुण्योंके प्रभावसे यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि, इस असार संसाररूपी बन्धनसे किसप्रकार मुक्ति होय ?

फिर ऐसा विचार करा कि, किसी ब्रह्मज्ञानी गुरुके समीप जाना चाहिये, इसी अन्तरमें उनको ब्रह्मज्ञानके समुद्र परमदयालु श्रीअष्टावक्रजी मिले; इन मुनिकी आकृतिको देखकर राजा जनकको यह अभिमान हुआ कि, यह ब्राह्मण अत्यन्तही कुरूप है, तब सब चित्तका वृत्तान्त जाननेवाले अष्टावक्रजी राजाके मनका विचार दिव्यदृष्टिके द्वारा जानकर जनकसे बोले कि, हेराजन् ! देह दृष्टिको छोड़कर आत्मदृष्टि करो यह देह टेढ़ा है परन्तु आत्मा टेढा नहीं है । जिसप्रकार नदी टेढी होती है, परन्तु जल टेढा नहीं होता है । और इक्षु (गन्ना) टेढा होता है परन्तु रस टेढा नहीं होता है. तिसीप्रकार यद्यपि पांचभौतिक देह टेढा है, परन्तु आत्मा टेढा नहीं है । किन्तु आत्मा असङ्ग निर्विकार व्यापक ज्ञानघन सच्चिदानन्दस्वरूप अखण्ड अच्छेद्य अभेद्य नित्य शुद्ध बुद्ध और मुक्तस्वभाव है. इसकारण हे राजन् ! तुम देह दृष्टिको त्यागकर आत्मदृष्टि करो । परमदयालु अष्टावक्रजीके इसप्रकारके वचन सुननेसे राजा जनकका मोह दूर होगया । तब तो राजा जनक यह विचारने लगे कि, मेरे मनोरथ सिद्ध होगये, मैं अब इनकोही गुरू करूँगा; क्योंकि यह महात्मा ब्रह्मविद्याके समुद्ररूप हैं, जीवन्मुक्त हैं, अब इनसे अधिक ज्ञानी मुझे कौन मिलेगा. अब तो इनसे गुरुदीक्षा लेकर इनकीही शरण लेना योग्य है ।

इसप्रकार विचारकर राजा जनक अष्टावक्रजीसे इसप्रकार बोले कि, हे महात्मन् ! मैं संसारबन्धनसे छुटनेके निमित्त आपकी शरण लेनेकी इच्छा करता हूँ। अष्टावक्रजीने भी राजा जनकको अधिकारी समझकर अपना शिष्य करलिया, तब राजा जनक अपने चित्तके सन्देहोंको दूर करनेके निमित्त और ब्रह्मविद्याके श्रवण करनेकी इच्छा करके अष्टावक्रजीसे पूँछने लगे।

कथं ज्ञानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति ॥
वैराग्यंचकथं प्राप्तमेतद्ब्रूहि मम प्रभो ॥१॥

अन्वयः—हे प्रभो ! (पुरुषः) ज्ञानम् कथम् अवाप्नोति। (पुंसः) मुक्तिः कथम् भविष्यति। (पुंसः) वैराग्यम् च कथम् प्राप्तम् (भवति) एतत् मम ब्रूहि ॥ १ ॥

अर्थः—अष्टावक्रजीसे राजा जनक प्रश्न करते हैं—कि, हे प्रभो ! अविद्या करके मोहित नानाप्रकारके मिथ्या सङ्कल्प विकल्पों करके वारंवार जन्ममरणरूप दुःखोंको भोगनेवाले इस पुरुषको अविद्या निवृत्तिरूप ज्ञान किसप्रकार प्राप्त होय है ? इन तीनों प्रश्नोंका उत्तर कृपा करके कहिये ॥ १ ॥

इसप्रकार राजा जनकके प्रश्न करनेपर ज्ञान विज्ञान सम्पन्न परमदयालु अष्टावक्रमुनिने विचारा कि, यह पुरुष अधिकारी है, संसारबंधनसे मुक्त होनेकी

इच्छासे मेरे समीप आया है; इसकारण इसको साधनचतुष्टयपूर्वक ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करूँ साधनचतुष्टयके विना कोटि उपाय करनेसे भी ब्रह्मविद्या फलीभूत नहीं होती है. इसकारण शिष्यको प्रथम साधन चतुष्टयका उपदेश करना योग्य है सोई व्यासजीने भी कहा है (अथातो ब्रह्मजिज्ञासा १ पा० १ अ० १ सू०—साधनचतुष्टयके अनन्तर ब्रह्मज्ञानके विषयकी इच्छा करनी चाहिये) इसप्रकार विचारकर अष्टावक्रजी बोले कि,

अष्टावक्र उवाच ।

मुक्तिमिच्छसिचेत्तात विषयान्विषवत्त्यज ॥
क्षमार्जवदयातोषसत्यं पीयूषवद्भज ॥ २ ॥

अन्वयः—हे तात ! चेत् मुक्तिम् इच्छसि (तर्हि) विषयान् विषवत् (अवगत्य) त्यज । क्षमार्जवदयातोषसत्यम् पीयूषवत् (अवगत्य) भज ॥ २ ॥

अर्थः—हे तात ! हे शिष्य ! सम्पूर्ण अनर्थोंकी निवृत्ति और परमानन्द प्राप्तिरूप मुक्तिकी इच्छा होय तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच विषयोंका त्याग करदे, यह पांच विषय कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका इन पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके हैं यह सम्पूर्ण जीवके बंन्धन हैं, इनसे बँधा हुआ जीव उत्पन्न होय है और मरे है तब बड़ा दुःखी होय है । जिसप्रकार विष भक्षण करने-

वाले पुरुषको दुःख होय है, तिसीप्रकार शब्दादिविषय-भोग करनेवाला पुरुष दुःखी होता है। अर्थात् शब्दादि विषय महा अनर्थका मूल है। उन विषयों-को तू त्यागदे। अभिप्राय यह है कि, देह आदिके विषे मैं हूं, मेरा है इत्यादि अध्यास मत करे. इसप्रकार बाह्य इंद्रियोंको दमन करनेका उपदेश करा जो पुरुष इसप्रकार करता है उसको 'दम' नामवाले प्रथम साधनकी प्राप्ति होती है और जो अन्तःकरणको वशमें करलेय है उसको 'शम' नामवाली दूसरी साधन सम्पत्ति प्राप्त होती है। और जिसका मन अपने वशमें होजाता है उसका एक ब्रह्माकार मन होजाता है, उसका नाम वेदान्त शास्त्रमें निर्विकल्पक समाधि कहा है, उस निर्विकल्पक समाधिकी स्थितिके अर्थ क्षमा (सब सहलेना) आर्जव (अविद्यारूप दोषसे निवृत्ति रखना), दया (विनाकारणही पराया दुःख दूर करनेकी इच्छा) तोष (सदा सन्तुष्ट रहना), सत्य (त्रिकालमें एक रूपता) इन पांच सात्विक गुणोंका सेवन कर। जिस प्रकार कोई पुरुष अमृततुल्य औषधि सेवन करे हैं, और उस औषधिके प्रभवासे उसके सम्पूर्ण रोग दूर होजाते हैं, तिसीप्रकार जो पुरुष अमृततुल्य इन पांच गुणोंको सेवन करता है, उसके जन्ममृत्युरूप रोग दूर होजाते हैं अर्थात् इस संसारकेविषे जिस पुरुषको

मुक्तिकी इच्छा होय वह विषयोंका त्याग करदेय, विषयोंका त्याग करे विना मुक्ति कदापि नहीं होती है, मुक्ति अनेक दुःखोंकी दूर करनेवाली और परमानन्दकी देनेवाली है । इसप्रकार अष्टावक्रमुनिने प्रथम शिष्यको विषयोंको त्यागनेका उपदेश दिया ॥ २ ॥

अब मुनि साधनचतुष्टयसम्पन्न शिष्यको मुक्तिका उपदेश करे हैं–

तहाँ शिष्य शंका करे है कि, हे गुरो ! पंचभूतका शरीरही आत्मा है और पंचभूतोंकेही पांच विषय हैं, सो इन पंचभूतोंका जो स्वभाव है उसका कदापि त्याग नहीं होसक्ता, क्योंकि पृथ्वीसे गन्धका या गन्धसे पृथ्वीका कदापि वियोग नहीं होसके है किन्तु वह दोनों एकरूप होकर रहते हैं. इसीप्रकार रस और जल अग्नि और रूप, वायु और स्पर्श, शब्द और आकाश है। अर्थात् शब्दादि पाँच विषयोंका त्याग तो तब होसके हैं जब पंचभूतोंका त्याग होय; और यदि पञ्चभूतका त्याग होय तो शरीरपात होजायगा फिर उपदेश ग्रहण करनेवाला कौन रहेगा ? तथा मुक्तिसुखको कौन भोगेगा ? अर्थात् विषयका त्याग तो कदापि नहीं होसक्ता। इस शंकाको निवारण करनेके अर्थ अष्टावक्रजी उत्तर देते हैं–

नपृथ्वीनजलंनाग्निर्नवायुर्द्यौर्नवाभवान्।
एषांसाक्षिणमात्मानंचिद्रूपंविद्धिमुक्तये॥३॥

अन्वयः–(हे शिष्य !) भवान् पृथ्वी न । जलम् न । अग्निः न । वायुः न । वा द्यौः न । एषाम् साक्षिणम् चिद्रूपम् आत्मानम् मुक्तये विद्धि ॥ ३ ॥

अर्थः–हे शिष्य ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा इनके धर्म जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध सो तू नहीं है । इस पाञ्चभौतिक शरीरके विषे तू अज्ञानसे अहम्भाव (मैं हूं, मेरा है इत्यादि) माने है इनका त्यागकर अर्थात् इस शरीरके अभिमानका त्याग करदे, और विषयोंको अनात्मधर्म्म जानकर त्याग करदे । अब शिष्य इस विषयमें फिर शंका करे है कि, हे गुरो ! मैं गौरवर्ण हूँ, स्थूल हूँ, कृष्ण वर्ण हूँ, रूपवान् हूँ, पुष्ट हूँ, कुरूप हूँ, काणा हूँ, नीच हूँ, इसप्रकारकी प्रतीति इस पाञ्चभौतिक शरीरमें अनादिकालसे सबही पुरुषोंको होय है, फिर तुमने जो कहा कि, तू देह नहीं है सो इसमें क्या युक्ति है ? तब अष्टावक्र बोले कि, हेशिष्य ! अविवेकी पुरुषको इसप्रकार प्रतीति होय है, विवेकदृष्टिसे तू देह इन्द्रियादिका द्रष्टा और देह इन्द्रियादिसे पृथक् है । जिसप्रकार घटको देखनेवाला पुरुष घटसे पृथक् होय है, तिसीप्रकार आत्माकोभी सर्व दोषरहित

और सबका साक्षी जान । इस विषयमें न्यायशास्त्रवालों-की शंका है कि, साक्षिपना तो बुद्धिमें रहे है, इसकारण बुद्धिही आत्मा होजायगी, इसका समाधान यह है कि, बुद्धितो जड है, और आत्मा चेतन माना है, इसकारण जड़ जो बुद्धि सो आत्मा नहीं होसके है । तो आत्माको चैतन्य स्वरूप जान । तहाँ शिष्य प्रश्न करे है कि, हे गुरो ! चैतन्यरूप आत्माके जाननेसे क्या फल होय है सो कहिये ? तिसके उत्तरमें अष्टावक्रजी कहे हैं कि, साक्षी और चैतन्य जो आत्मा तिसको जाननेसे पुरुष जीवन्मुक्तपदको प्राप्त होय है, यही आत्म-ज्ञानका फल है मुक्तिका स्वरूप किसीके विचा-रमें नहीं आया हैं, षट्शास्त्रकार अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार मुक्तिके स्वरूपकी कल्पना करे हैं । न्यायशास्त्रवाले इसप्रकार कहे हैं कि, दुःखमात्रका जो अत्यन्त नाश है वही मुक्ति है, और बलवान् प्रभाकर मतावलम्बी मीमांसकोंका इसप्रकार कथन है कि, समस्त दुःखोंके उत्पन्न होनेसे पहिले जो सुख है वही मुक्ति है, बौद्धमतवालोंका यह कथन है कि, देहका नाश होनाही मुक्ति है; इसप्रकार भिन्न भिन्न कल्पना करे हैं, परन्तु यथार्थ बोध नहीं होता है, किन्तु वेदान्त शास्त्रके अनुसार आत्मज्ञानही मुक्ति है इसकारण अष्टावक्रमुनि शिष्यको उपदेश करै हैं ॥ ३ ॥

यदिदेहंपृथक्कृत्यचितिविश्राम्यतिष्ठसि ।
अधुनैवसुखीशान्तोबंधमुक्तोभविष्यसि ४

अन्वयः-(हे शिष्य!) यदि देहम् पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि (तर्हि) अधुना एव सुखी शान्तः बन्धमुक्तः भविष्यसि ॥ ४ ॥

अर्थः-हे शिष्य! यदि तू देह तथा आत्माका विवेक करके अलग जानेगा और आत्माके विषे विश्राम करके चित्तको एकाग्र करेगा तो तू इस वर्त्तमानही मनुष्यदेहकेविषे सुख तथा शान्तिको प्राप्त होयगा; अर्थात् बंधमुक्त कहिये कर्त्तृत्व (कर्त्तापना) भोक्तृत्व (भोक्तापना) आदि अनेक अनर्थोंसे छूट जायगा ॥४॥ शिष्य प्रश्न करे है कि, हे गुरो! मैं तो वर्णाश्रमके धर्ममें हूँ तिसकारण वर्णाश्रम कर्मका करना योग्य है, अर्थात् वर्णाश्रमके कर्म करनेसे आत्माके विषे विश्राम करके मुक्ति किसप्रकार होयगी? तिसका गुरु समाधान करै हैं कि:-

नत्वंविप्रादिकोवर्णोनाश्रमीनाक्षगोचरः ।
असंगोसिऽनिराकारोविश्वसाक्षीसुखीभव ५

अन्वयः--त्वम् विप्रादिकः वर्णः न आश्रमी न अक्षगोचरः न (किन्तु, त्वम्) असंगः निराकारः विश्वसाक्षी

असि (अतः कर्मासक्तिम् विहाय चिति विश्राम्य) सुखी भव ॥ ५ ॥

अर्थः-- तू ब्राह्मण आदि नहीं है, तू ब्रह्मचारी आदि किसी आश्रममें नहीं है, तहाँ शिष्य प्रश्न करे है कि, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं संन्यासी हूँ, इत्यादि प्रत्यक्ष होय है, इस कारण आत्माही वर्णाश्रमी है. तहाँ गुरु समाधान करै हैं कि, आत्माका इन्द्रिय तथा अन्तःकरण करके प्रत्यक्ष नहीं होय है, और जिसका प्रत्यक्ष होय है वह देह है, तहाँ शिष्य प्रश्न करे है कि, मैं क्या वस्तु हूँ ? तहाँ गुरु समाधान करै हैं कि, तू असङ्ग अर्थात् देहादिक उपाधि यथा आकाररहित विश्वका साक्षी आत्मस्वरूप है, अर्थात् तेरेमें वर्णाश्रमपणा नहीं है, इसकारण कर्मोंके विषे आसक्ति न करके चैतन्यरूप आत्माके विषे विश्राम करके परमानन्दको प्राप्त हो ॥ ५ ॥

तहाँ शिष्य प्रश्न करे है कि, वेदोक्त वर्णाश्रमके कर्मोंको त्यागकर आत्माकेविषे विश्राम करनेमें भी तो अधर्मरूप प्रत्यवाय होय है, तिसका गुरु समाधान करै हैं कि--

धर्माधर्मौसुखंदुःखंमानसानिनतेविभो ।
नकर्तासिनभोक्तासिमुक्तएवासिसर्वदा ॥६॥

अन्वयः--हे विभो धर्माधर्मौ सुखम् दुःखम् मानसानि

ते न) त्वम्) कर्त्ता न असि भोक्ता न असि (किन्तु) सर्वदा मुक्त एव असि ॥ ६ ॥

अर्थः—हे शिष्य! धर्म, अधर्म, सुख और दुःख यह तो मनका संकल्प है। तिसकारण तिन धर्माधर्मादिके साथ तेरा त्रिकालमें भी सम्बन्ध नहीं है. तू कर्त्ता नहीं है, तू भोक्ता नहीं है, क्योंकि विहित अथवा निषिद्ध कर्म करता है वही सुख दुःख भोक्ता है सो तुझमें नहीं है, क्योंकि तूतो शुद्धस्वरूप है और सर्वदा काल-मुक्त है. अज्ञान करके भासनेवाले सुख दुःख, आत्माके विषे आश्रय करकेही निवृत्त हो जाते हैं ॥ ६ ॥

तहां शिष्य प्रश्न करे है कि, शुद्ध, बुद्ध, एक, नित्य, मुक्त ऐसा जो आत्मा है तिसका बन्धन किस निमि-त्तसे होय है कि, जिस बन्धनके छुटानेके अर्थ बड़े २ योगी पुरुष यत्न करै हैं? तहां गुरु समाधान करै हैं कि—

एकोद्रष्टासिसर्वस्यमुक्तप्रायोऽसिसर्वदा।
अयमेवहितेबन्धोद्रष्टारंपश्यसीतरम् ॥७॥

अन्वयः—(हे शिष्य! त्वम्) सर्वस्य द्रष्टा एकः असि सर्वदा मुक्तप्रायः असि हि ते अयम् एव बन्धः (यम्) द्रष्टारम् इतरम् पश्यसि ॥ ७ ॥

अर्थः—हे शिष्य! तू अद्वितीय सर्वसाक्षी सर्वदा मुक्त है तू जो द्रष्टाको द्रष्टा न जानकर अन्य जाने है

यही बन्धन है सर्वप्राणियोंमें विद्यमान् आत्मा एकही है और अभिमानी जीवके जन्मजन्मान्तर ग्रहण करनेपर भी आत्मा सर्वदा मुक्त है। तहां शिष्य प्रश्न करे है कि, फिर संसारबन्ध क्यावस्तु है ? तिसका गुरु समाधान करै हैं कि, यह प्रत्यक्ष देहाभिमानही संसार बन्धन है अर्थात् यह कार्य करता हूँ यह भोग करता हूँ इत्यादि ज्ञानही संसारबन्धन है वास्तवमें आत्मा निर्लेप है तथापि देह और मनके भोगको आत्माका भोग मानकर बद्धसा होजाय है ॥ ७ ॥

यहां पर्यन्त बन्ध हेतुका वर्णन करा अब अनर्थके हेतुका वर्णन करते हुए अनर्थकी निवृत्ति और परमानन्दके उपायका वर्णन करते हैं—

अहंकर्त्तेत्यहंमानमहाकृष्णाहिदंशितः।
नाहंकर्त्तेतिविश्वासामृतंपीत्वासुखीभव ८॥

अयन्वः—(हे शिष्य !) अहम् कर्त्ता इति अहंमानमहाकृष्णाहिदंशितः (त्वम्) अहं कर्त्ता न इति विश्वासामृतम् पीत्वा सुखी भव ॥ ८ ॥

अर्थः—'मैं कर्त्ता हूँ' इसप्रकार अहंकाररूप महा काले सर्प करके तू काटा हुआ है। इसकारण मैं कर्त्ता नहीं हूँ, इसप्रकार विश्वासरूप अमृत पी करके सुखी हो। आत्माभिमानरूप सर्पके विषकरके ज्ञानरहित

और जर्जरी भूत हुआ है, यह बन्धन जितने दिनों पर्यन्त रहेगा तबतक किसीप्रकार सुखकी प्राप्ति नहीं होयगी; जिस दिन यह जानेगा कि, मैं देहादि कोई वस्तु नहीं हूँ, मैं निर्लिप्त हूँ, उस दिन किसी प्रकारका मोह स्पर्श नहीं कर सकेगा ॥ ८ ॥

तहां शिष्य प्रश्न करे है कि, आत्मज्ञानरूपी अमृत पान किसप्रकार करूं ? तहां गुरु समाधान करे हैं कि—

एकोविशुद्धबोधोऽहमितिनिश्चयवह्निना ॥
प्रज्वाल्याज्ञानगहनंवीतशोकःसुखीभव ९

अन्वयः—(हे शिष्य !) अहम् विशुद्धबोधः एकः (अस्मि) इति निश्चयवह्निना अज्ञानगहनम् प्रज्वाल्य वीतशोकः (सन्) सुखी भव ॥ ९ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! मैं एक हूँ अर्थात् मेरे विषे सजाति विजातिका भेद नहीं है और स्वगत भेद भी नहीं है, केवल एक विशुद्ध बोध और स्वप्रकाशरूप हूँ, निश्चयरूपी अग्निसे अज्ञानरूपी वनको भस्म करके, शोक मोह, राग, द्वेष, प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु इनके नाश होनेपर शोकरहित होकर परमानन्दको प्राप्त हो ॥ ९ ॥

तहां शिष्य शंका करे है कि, आत्मज्ञान करके अज्ञानरूपी वनके भस्म होनेपरभी सत्यरूप संसारकी ज्ञानसे निवृत्ति न होनेके कारण शोक रहित किस-

प्रकार होऊँगा ? तिसका गुरु समाधान करै हैं कि:—

यत्रविश्वमिदंभातिकल्पितंरज्जुसर्पवत् ॥
आनन्दपरमानन्दःसबोधस्त्वंसुखंचर १०

अन्वयः—यत्र इदम् विश्वम् रज्जुसर्पवत् कल्पितम् भाति सः आनन्दपरमानन्दः बोधः त्वम् सुखम् चर १०

अर्थः—हे शिष्य ! जिसप्रकार रज्जुकेविषे सर्पकी प्रतीति होय है और उसका भ्रम प्रकाश होनेसे निवृत्ति होजाय है, तिसीप्रकार ब्रह्मकेविषे जगत्की प्रतीति अज्ञान कल्पित है ज्ञान होनेसे नष्ट हो जाय है। तू ज्ञानरूप चैतन्य आत्मा है, इसकारण सुखपूर्वक विचर। जिसप्रकार स्वप्नमें किसी पुरुषको सिंह मारता होय तो वह बड़ा दुःखी होय है परन्तु निद्राके दूर होनेपर उस कल्पित दुःखका जिसप्रकार नाश हो जाय है तिसप्रकार तू ज्ञानसे अज्ञानका नाश करके सुखी हो। तहां शिष्य प्रश्न करे है कि, हे गुरु ! दुःखरूप जगत् अज्ञान करके प्रतीत होय है और ज्ञान करके उसका नाश होजाय है। परन्तु सुख किसप्रकार प्राप्त होय है ? तिसका गुरु समाधान करै हैं कि, हे शिष्य ! जब दुःखरूपी संसारके नाश होनेपर आत्मा स्वभावसेही आनन्दस्वरूप होजाय है. मनुष्य लोकसे तथा देवलोकसे आत्माका आनन्द परमउत्कृष्ट और अत्यन्त अधिक है सोई श्रुतिमें भी कहा है—“एत

स्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानिमात्रमुपजीवन्ति " इति श्रुतेः ॥ १० ॥

शिष्य शंका करे है कि, यदि सम्पूर्ण संसार रज्जुके विषे सर्पकी समान कल्पित है, वास्तवमें आत्मा परमानन्दस्वरूप है तो बन्ध मोक्ष किसप्रकार होय है तहाँ गुरु समाधान करे हैं कि–

मुक्ताभिमानीमुक्तोहिबद्धोबद्धाभिमान्यपि ।
किंवदंतीहसत्येयंयामतिः सागतिर्भवेत् ११

अन्वयः–इह मुक्ताभिमानी मुक्तः अपि बद्धाभिमानी बद्धः हि या मतिः सा गतिः भवेत् इयम् किं वदन्ती सत्या ॥ ११ ॥

अर्थः–हे शिष्य ! जिसपुरुषको गुरुकी कृपासे यह निश्चय होजाय है कि, मैं मुक्तरूप हूँ वही मुक्त है और जिसके ऊपर सद्गुरुकी कृपा नहीं होती है और वह यह जाने है कि, मैं अल्पज्ञ जीव और संसारबन्धनमें बँधा हुआ हूँ वही बद्ध है क्योंकि बन्ध और मोक्ष अभिमानसेही उत्पन्न होते हैं अर्थात् मरणसमयमें जैसा अभिमान होता है वैसीही गति होती है। यह बात श्रुति, स्मृति, पुराण और ज्ञानीपुरुष प्रमाण मानते हैं कि " मरणे यामतिः सा गतिः " सोई गीतामें भी कहा है कि– " यंयं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम् । तंतमेवैति कौंतेय सदा तद्भाव

भावितः " इसका अभिप्राय यह है कि, श्रीकृष्ण उपदेश करै हैं कि, हे अर्जुन ! अन्तसमयमें जिस जिस भावको स्मरण करता हुआ पुरुष शरीरको त्यागे है तिस तिस भावनासे तिस तिस गतिकोही प्राप्त होय है; सोई श्रुतिमें भी कहा है कि– " तं विद्याकर्मणी समारभेते पूर्वप्रज्ञाच " इसका भी यही अभिप्राय है, और बन्ध तथा मोक्ष अभिमानसे होते हैं वास्तवमें नहीं । यह वार्ता पहले कह आये हैं तथापि दूसरीबार कहना शिष्यको बोध होनेके अर्थ है तिसकारण कोई दोष नहीं है क्योंकि आत्मज्ञान अत्यन्त कठिन है ॥ ११ ॥

जीवात्माके बन्ध और मोक्ष पारमार्थिक हैं इस तार्किककी शंकाको दूर करनेके निमित्त कहे हैं कि–

आत्मासाक्षीविभुःपूर्णएकोमुक्तश्चिदक्रियः ।
असंगोनिःस्पृहःशान्तोभ्रमात्संसारवानिव ।

अन्वयः–साक्षी विभुः पूर्णः एकः मुक्तः चित् अक्रियः असङ्गः निःस्पृहः शान्तः आत्मा भ्रमात् संसारवान् इव (भाति) ॥ १२ ॥

अर्थः–अज्ञान करके देहको आत्मा माना है तिसकारण वह संसारी प्रतीत होता है परन्तु वास्तवमें संसारी नहीं है; क्योंकि आत्मा तो साक्षी है और अहंकारादि

अंतःकरणके धर्मको जाननेवाला है और विभु अर्थात् नाना प्रकारका संसार जिससे उत्पन्न हुआ है, सर्वका अधिष्ठान है. सम्पूर्ण व्यापक है, एक अर्थात् स्वगतादिक तीन भेद करके रहित है, और मुक्त अर्थात् मायाका कार्य जो संसार तिसके बन्धन करके रहित चैतन्यरूप, अक्रिय, असङ्ग और निस्पृह अर्थात् विषयकी इच्छा करके रहित है, और शान्त अर्थात् प्रवृत्ति निवृत्ति रहित है, इसकारण वास्तवमें आत्मा संसारी नहीं है ॥ १२ ॥

मैं देहरूप हूँ, स्त्रीपुत्रादिक मेरे हैं, मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ यह अनादि कालका अज्ञान एकबार आत्मज्ञानके उपदेशसे निवृत्त नहीं होसके है सोई व्यासजी महाराजने भी कहा है "आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" श्रोतव्य मंतव्य इत्यादि श्रुतिके विषे वारंवार उपदेश करा है. इसकारण श्रवण मननादि वारंवार करने चाहिये । इस प्रमाणके अनुसार अष्टावक्रमुनि उत्सितवासनाओंका त्याग करते हुए वारम्वार अद्वैतभावनाका उपदेश करै हैं कि-

कूटस्थंबोधमद्वैतमात्मानंपरिभावय । अ
भासोहंभ्रमंमुक्त्वाभावंबाह्यमथांतरम् ॥१३॥

अन्वयः-अभासः अहम् (इति) भ्रमम् अथ बाह्यम्

अन्तरम् भावम् मुक्त्वा आत्मानम् कूटस्थम् बोधम् अद्वैतम् परिभावय ॥ १३ ॥

अर्थः--मैं अहंकार नही हूँ, मैं देह नहीं हूँ, स्त्रीपुत्रादिक मेरे नहीं हैं, मैं सुखी नहीं हूँ, दुखी नहीं हूँ, मूढ नहीं हूँ, इन बाह्य और अन्तरकी भावनाओंका त्याग करके कूटस्थ अर्थात् निर्विकार बोधरूप अद्वैत आत्मस्वरूपका विचार कर ॥ १३ ॥

अनादिकालका यह देहाभिमान एकवार उपदेश करनेसे निवृत्ति नहीं होय है इसकारण उपदेश करे हैं कि–

देहाभिमानपाशेनाचिरंबद्धोऽसिपुत्रक । बोधोहंज्ञानखड्गेनतान्निःकृत्यसुखीभव ॥१४॥

अन्वयः–हे पुत्रक ! देहाभिमानपाशेन चिरम् बद्धः असि (अत) अहम् बोधः (इति) ज्ञानखड्गेन तम् निःकृत्य सुखी भव ॥ १४ ॥

अर्थः–हे शिष्य ! अनादिकालसे इस समय पर्यन्तके देहाभिमानरूपी फाँसी करके तू दृढ़ बँधा हुआ है अनेक जन्मोंमें भी उस बन्धनके काटनेको समर्थ नहीं होयगा इसकारण, शुद्धविचार वारंवार करके 'मैं बोधरूप' अखंड, परिपूर्ण आ-

त्मरूप हूँ, इस ज्ञानरूपी खड्गको हाथमें लेकर उस फाँसीको काटकर सुखी हो ॥ १४ ॥

केवल चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप समाधिही बन्धनकी निवृत्तिका हेतु है इस पातञ्जल मतका खंडन करै हैं कि—

निःसंगो निष्क्रियोऽसि त्वं स्वप्रकाशो-निरंजनः। अयमेव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि ॥ १५ ॥

अन्वयः—(हे शिष्य!) त्वम् (वस्तुतः) स्वप्रकाशः निरंजनः निःसंगः निष्क्रियः असि (तथापि) हि ते बन्धः अयम् एव (यत्) समाधिम् अनुतिष्ठसि ॥ १५ ॥

अर्थः—पातंजलयोगशास्त्रमें वर्णन करा है कि, जिसके अंतःकरणकी वृत्ति विरामको प्राप्त होजाती है उसका मोक्ष होता है सो यह बात कल्पनामात्रही अर्थात् तू अंतःकरणकी वृत्तिको जीतकर सविकल्पक हठ समाधि मतकर क्योंकि तू निःसङ्ग क्रियारहित स्वप्रकाश और निर्मल है इसकारण सविकल्प हठ समाधिका अनुष्ठान भी तेरा बन्धन है, आत्मा सदा शुद्ध मुक्त है तिसकारण भ्रान्तियुक्त जीवके चित्तको स्थिर करनेके निमित्त समाधिका अनुष्ठान करनेसे आत्माकी हानि वृद्धि कुछ नहीं होती है जिसको सिद्धि लाभ अर्थात्

आत्मज्ञान होजाता है उसको अन्य समाधिके अनुष्ठानसे क्या प्रयोजन है ? इसकारणही राजा जनकके प्रति अष्टावक्र वर्णन करे हैं कि, तू जो समाधिका अनुष्ठान करे है यही तेरा बन्धन है, परन्तु आत्मज्ञान विहीन पुरुषको ज्ञानप्राप्तिके निमित्त समाधिका अनुष्ठान करना आवश्यक है ॥ १५ ॥

अब शिष्यकी विपरीतबुद्धिको निवारण करनेके निमित्त गुरु उपदेश करे हैं कि–

त्वया व्याप्तमिदं विश्वं त्वयि प्रोतं यथार्थतः । शुद्धबुद्धस्वरूपस्त्वं मा गमः क्षुद्रचित्तताम् ॥ १६ ॥

अन्वयः–(हे शिष्य !) इदम् विश्वम् त्वया व्याप्तम् त्वयि प्रोतम् यथार्थतः शुद्धबुद्धस्वरूपः त्वम् क्षुद्रचित्तताम् मा गमः ॥ १६ ॥

अर्थः– हे शिष्य ! इसप्रकार सुवर्ण करके कटक कुण्डल आदि सुवर्ण करके व्याप्त होय है इसीप्रकार यह दृश्यमान संसार तुझकरके व्याप्त है और जिसप्रकार मृत्तिकाके विषे घट शराव आदि करा हुआ होय है तिसीप्रकार यह सम्पूर्ण संसार तेरेविषे प्रोत है, हे शिष्य ! यथार्थ विचार करके तू सर्व प्रपंचरहित है तथ

शुद्ध बुद्ध चिद्रूप है, तू चित्तकी वृत्तिको विपरीत मतकर ॥ १६ ॥

इसदेहके विषे छः ऊर्मी तथा छः भाव विकार प्रतीत होते हैं सो तू नहीं है किन्तु उनसे भिन्न और निरपेक्ष अर्थात् इच्छा रहित है, तहाँ शिष्य आशङ्का करे है कि, हे गुरो ! छः ऊर्मी और छः भाव विकारोंको विस्तारपूर्वक वर्णन करो तहाँ गुरु वर्णन करे हैं कि—

निरपेक्षोनिर्विकारोनिर्भरःशीतलाशयः ।
अगाधबुद्धिरक्षुब्धोभवचिन्मात्रवासनः १७

अन्वयः—(हे शिष्य ! त्वम्) निरपेक्षः निर्विकारः निर्भरः शीतलाशयः अगाधबुद्धिः अक्षुब्धः चिन्मात्रवासनो भव ॥ १७ ॥

अर्थः—हेशिष्य ! क्षुधा, पिपासा (भूँख प्यास) यह दो प्राणकी ऊर्मी अर्थात् धर्म्म हैं और तिसीप्रकार शोक तथा मोह यह दो मनकी ऊर्मी हैं. तिसीप्रकार जन्म और मरण यह दो देहकी ऊर्मी हैं, यह जो छः ऊर्मी हैं सोतू नहीं है । अब छः भाव विकारोंको श्रवणकर " जायते, अस्ति, वर्धते विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति " । यह छः भाव स्थूलदेहके विषे रहे हैं सो तू नहीं है तू तो उनका साक्षी अर्थात् जाननेवाला है, तहाँ शिष्य प्रश्न करेहै कि, हे गुरो ! मैं कौन और क्या

हूँ सो कृपा करके कहिये. तहाँ गुरु कहे है कि, हे शिष्य ! तू निर्भर अर्थात् सच्चिदानन्दघनरूप है. शीतल अर्थात् सुखरूप है, तू अगाधबुद्धि अर्थात् जिसकी बुद्धिका कोई पार न पासके ऐसा है; और अक्षुब्ध कहिये क्षोभरहित है इसकारण तू क्रियाका त्याग करके चैतन्यरूप हो ॥ १७ ॥

श्रीगुरु अष्टावक्रमुनिने प्रथम एक श्लोकमें मोक्षका विषय दिखाया था कि, "विषयान् विषवत्यज" और "सत्यं पीयूषवद्भज" इसप्रकार प्रथम श्लोकमें सब उपदेश दिया । परन्तु विषयोंके विषतुल्य होनेमें और सत्यरूप आत्माके अमृततुल्य होनेमें कोई हेतु वर्णन नहीं करा, सो १७ वें श्लोककेविषे इसका वर्णन करके आत्माको सत्य और जगत्को अध्यस्त वर्णन करा है. दर्पणकेविषे दीखता हुआ प्रतिबिम्ब अध्यस्त कहलाता है, यह देखने मात्र होय है सत्य नहीं. क्योंकि दर्पणके देखनेसे जो पुरुष होय उसका शुद्ध प्रतिबिम्ब दीखता है और दर्पणके हटानेसे वह प्रतिबिम्ब पुरुषमें लीन होजाताहै । इसकारण आत्मा सत्य है और उसका जो जगत् वह बुद्धियोगसे भासे है तिस जगत्को विषतुल्य जान और आत्माको सत्य जान तब मोक्षरूप पुरुषार्थ सिद्ध होयगा । इसकारण अब तीन श्लोकोंकरके जगत्का मिथ्यात्व वर्णन करे हैं कि—

साकारमनृतं विद्धि निराकारं तु निश्चलम्।
एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसम्भवः ॥१८॥

अन्वयः-(हे शिष्य!) साकारम् अनृतम् निराकारं तु निश्चलम् विद्धि एतत्तत्त्वोपदेशेन पुनर्भवसम्भवः न ॥ १८ ॥

अर्थः-हे शिष्य साकार जो देह तिसको आदिले सम्पूर्ण पदार्थ मिथ्या कल्पित हैं और निराकार जो आत्मतत्त्व सो निश्चल है और त्रिकालमें सत्य है सोई श्रुतिमें भी कहा है "नित्यं विज्ञान मानन्दं ब्रह्म" इसकारण चिन्मात्ररूपतत्त्वके उपदेश करके आत्माकेविषे विश्राम करनेसे फिर संसारमें जन्म नहीं होता है अर्थात् मोक्ष होजाता है ॥ १८ ॥

अब गुरु अष्टावक्रजी वर्णाश्रमधर्मवाला जो स्थूल शरीर है तिससे और पुण्यअपुण्य धर्मवाला जो लिङ्ग शरीर है तिनसे विलक्षण परिपूर्ण चैतन्य स्वरूपका दृष्टान्त सहित उपदेश करै हैं कि-

यथैवादर्शमध्यस्थेरूपेऽन्तःपरितस्तुसः।
तथैवास्मिन्शरीरेऽन्तःपरितःपरमेश्वरः १९

अन्वयः-यथा एव आदर्शमध्यस्थे रूपे अन्तः परितः तु सः (व्याप्य वर्त्तते) तथा एव अस्मिन् शरीरे अन्तः परितः परमेश्वरः (व्याप्य स्थितः) ॥ १९ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! वर्णाश्रम धर्मरूप स्थूलशरीर तथा पुण्य पापरूपी लिंगशरीर यह दोनों जड़ हैं सो आत्मा नहीं होसके है क्योंकि आत्मा तो व्यापक है इसविषयमें दृष्टान्त दिखावे हैं कि, जिसप्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़े है, उस दर्पणके भीतर और बाहर एक पुरुष व्यापक होय है । तिसीप्रकार इस स्थूल शरीरकेविषे एकही आत्मा व्यापरहा है सोई कहाभी है " यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जु सर्पवत् " अर्थात् जिस परमात्माके विषे यह विश्व रज्जुकेविषे कल्पित सर्पकी समान प्रतीत होता है; वास्तवमें मिथ्या है ॥ १९ ॥

ऊपरके श्लोकमें काँचका दृष्टान्त दिया है तिसमें संशय होय है कि—काँचमें देह पूर्णरीतिसे व्याप्त नहीं होय है तिसीप्रकार देहमें काँच पूर्ण रीतिसे व्याप्त नहीं होय है इस कारण दूसरा दृष्टान्त कहे हैं कि—

एकंसर्वगतं व्योम बहिरंतर्यथा घटे ॥
नित्यंनिरन्तरं ब्रह्मसर्वभूतगणे तथा ॥२०॥

अन्वयः—यथा सर्वगतम् एकम् व्योम घटे बहिः अंतः वर्त्तते तथा नित्यम् ब्रह्म सर्वभूतगणे निरन्तरम् वर्त्तते ॥ २० ॥

अर्थः—जिसप्रकार आकाश है, वह घटादि सम्पूर्ण

पदार्थोंमें व्यापरहा है, तिसीप्रकार अखण्ड अविनाशी ब्रह्म है वह सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे अंतरमें तथा बाहरमें व्यापरहा है, इस विषयमें श्रुतिका भी प्रमाण है, "एषत आत्मा सर्वस्यान्तरः" इसकारण ज्ञानरूपी खड्गको लेकर देहाभिमानरूपी फाँसीको काटकर सुखी हो ॥ २० ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसश्रीयुतपंडितभोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्म्मणा प्रणीतया सान्वयभाषाटीकया सहितमात्मानुभवोपदेशवर्णनंनाम प्रथमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयं प्रकरणम् २.

श्रीगुरुके वचनरूपी अमृत पानकर तिस करके आत्माका अनुभव हुआ, इसकारण शिष्य अपने गुरुके प्रति आत्मानुभव कहे हैं कि—

अहोनिरंजनःशान्तो बोधोहं प्रकृतेः परः।
एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडंबितः ॥ १ ॥

अन्वयः—अहो अहम् निरंजनः शान्तः प्रकृतेः परः बोधः (अस्मि) अहम् एतावंतम् कालम् मोहेन विडंबितः एव ॥ १ ॥

अर्थः—हे गुरो! बड़ा आश्चर्य दीखनेमें आवै है कि, मैं तो निरंजन हूँ, तथा सर्वउपाधिरहित हूँ, शान्त अर्थात् सर्वविकाररहित हूँ, तथा प्रकृतिसे पर अर्थात् मायाके अन्धकारसे रहित हूँ; अहो! आज दिनपर्यन्त गुरुकी कृपा नहीं थी इसकारण बहुत मोह था और देह आत्माका विवेक नहीं था तिस करके दुःखी था अब आज सद्गुरुकी कृपा हुई सो परमआनन्दको प्राप्त हुआ हूँ ॥ १ ॥

ऊपरके श्लोकमें शिष्य अपना मोह गुरुके पास वर्णन करा अब गुरुकी कृपासे देह आत्माका विवेक प्राप्त हुआ तहाँ गुरु समाधान करै हैं कि—

यथाप्रकाशयाम्येकोदेहमेनंतथाजगत् ।
अतोममजगत्सर्वमथवा नचाकिंचन ॥ २ ॥

अन्वयः—यथा (अहम्) एकः (एव) जगत् प्रकाशयामि तथा एनम् देहम् (प्रकाशयामि) अतः सर्वम् जगत् मम अथवा च किंचन न ॥ २ ॥

अर्थः—हे गुरो! मैं जिसप्रकार स्थूलशरीरको प्रकाश करताहूँ तिसही प्रकार जगत्कोभी प्रकाश करताहूँ, तिसकारण देह जड़ है तिसही प्रकार जगत् भी जड़ है. यहाँ शङ्का होय है कि—शरीर जड़ और आत्मा चैतन्य है तिन दोनोंका सम्बन्ध किसप्रकार

होय है ? तिसका समाधान करैं हैं कि, भ्रांति करके देहके विषे ममत्व माना है यह अज्ञान कल्पित है, देहको आदि लेकर बँधा जगत् दृश्य पदार्थ है, तिस कारण मेरे विषे कल्पित है. फिर यदि सत्य विचार करै तौ देहादिक जगत् हैही नहीं, जगत्की उत्पत्ति और प्रलय यह दोनों अज्ञानकल्पित हैं, तिस कारण देहसे पर आत्मा शुद्धस्वरूप है ॥ २ ॥

शिष्य आशंका करे है कि, लिंग शरीर और कारण शरीर इन दोनोंका विवेक तौ हुआही नहीं फिर प्रकृतिसे पर आत्मा किसप्रकार जाना जायगा ? तहाँ गुरु समाधान करै हैं कि–

सशरीरमहोविश्वं परित्यज्यमयाऽधुना। कुतश्चित्कौशलादेवपरमात्माविलोक्यते ॥३॥

अन्वयः–अहो अधुना सशरीरम् विश्वम् परित्यज्य कुतश्चित् कौशलात् एव मया परमात्मा विलोक्यते॥३॥

अर्थः–लिंग शरीर, कारण शरीर, तथा स्थूल शरीर सहित सम्पूर्ण विश्व है तहाँ गुरु शास्त्रके उपदेशके अनुसार त्याग करके और उन गुरु शास्त्रकी कृपासे चातुर्यताको प्राप्तहुआ हूँ तिस कारण परम श्रेष्ठ आत्मा जाननेमें आवै है अर्थात् अध्यात्म वेदान्त विद्या प्राप्त होय हैं ॥ ३ ॥

शरीर तथा जगत् आत्मासे भिन्न होयगा तो द्वैत-भाव सिद्ध होजायगा, ऐसी शिष्यकी शंका करनेपर उसके उत्तरमें दृष्टान्त कहे हैं कि-

यथानतोयतोभिन्नास्तरङ्गाःफेनबुद्बुदाः। आ-त्मनोनतथाभिन्नंविश्वमात्मविनिर्गतम् ॥४॥

अन्वयः-यथा तोयतः तरङ्गाः फेनबुद्बुदाः भिन्नाः न तथा आत्मविनिर्गतम् विश्वम् आत्मनः भिन्नम् न ॥ ४ ॥

अर्थ-जिसप्रकार तरङ्ग, झाग बुलबुले जलसे अलग नहीं होय हैं परन्तु उन तीनोंका कारण एक जलमात्र होय है तिसहीप्रकार त्रिगुणात्मक जगत् आत्मासे उत्पन्न हुआ है आत्मासे भिन्न नहीं है; जिस प्रकार, तरंग, झाग और बुलबुलोंमें जल व्याप्त है तिसहीप्रकार सर्व जगत्में आत्मा व्यापक है, आत्मासे भिन्न कुछ नहीं है ॥ ४ ॥

सर्व जगत् आत्मस्वरूप है तिसके निरूपण कर-नेके अर्थ दूसरा दृष्टान्त कहे हैं कि-

तंतुमात्रोभवेदेवपटोयद्वद्विचारितः ॥ आ-त्मतन्मात्रमेवेदंतद्वद्विश्वंविचारितम् ॥५॥

अन्वयः-यद्वत् विचारितः पटः तंतुमात्रः एव भवेत् तद्वत् विचारितम् इदम् विश्वम् आत्मतन्मात्रम् एव ॥ ५ ॥

अर्थः–विचारदृष्टिके विना देखे तो वस्त्र सूत्रसे पृथक् प्रतीत होय है, परन्तु विचारदृष्टिसे देखनेपर वस्त्र सूत्ररूपही है; इसीप्रकार अज्ञानदृष्टिसे जगत् ब्रह्मसे भिन्न प्रतीत होय है, परन्तु शुद्ध विचारपूर्वक देखनेसे सम्पूर्ण जगत् आत्मरूपही है; सिद्धांत यह है कि, जिस प्रकार वस्त्रमें सूत्र व्यापक है, तिसीप्रकार जगत्में ब्रह्म व्यापक है॥ ५॥

आत्मा सम्पूर्ण जगत्में व्यापक है इस विषयमें तीसरा दृष्टान्त दिखाये हैं–

यथैवेक्षुरसेक्लृप्तातेनव्याप्तैवशर्करा ॥ तथा-विश्वंमयिक्लृप्तंमयाव्याप्तंनिरन्तरम् ॥ ६ ॥

अन्वयः–यथा इक्षुरसे क्लृप्ता शर्करा तेन–एव व्याप्ता तथा–एव मयि क्लृप्तम् विश्वम् निरन्तरं मया व्याप्तम् ॥ ६ ॥

अर्थः–जिसप्रकार इक्षु (पौंडा) के रसके विषे शर्करा रहती है, और शर्कराके विषे रस व्याप्त है, तिसीप्रकार परमानन्दरूप आत्माकेविषे जगत् अध्यस्त है, और जगत्के विषे निरन्तर आत्मा व्याप्त है, तिसकारण विश्व भी आनन्दस्वरूपही है। तिस करके "अस्ति, भाति, प्रियम्," इसप्रकार आत्मा सर्वत्र व्याप्त है॥ ६॥

शिष्य प्रश्न करै है कि, हे गुरो! यदि जगत् आत्मासे भिन्न नहीं है तो भिन्न प्रतीत किसप्रकार होय है? तहाँ गुरु उत्तर दे हैं कि–

आत्माज्ञानाज्जगद्भातिआत्मज्ञानान्नभासते।
रज्ज्वज्ञानादहिर्भातितज्ज्ञानाद्भासतेनहि॥७॥

अन्वयः–जगत् आत्माज्ञानात् भाति आत्मज्ञानात् न भासते हि रज्ज्वज्ञानात् अहिः भाति तज्ज्ञानात् न भासते ॥ ७ ॥

अर्थः–जब आत्मज्ञान नहीं होय है, तब जगत् भासे है, और जब आत्मज्ञान हो जाय है, तब जगत् कोई वस्तु नहीं होय है तहाँ दृष्टान्त दिखावे हैं कि, जिसप्रकार अन्धकारमें पड़ी हुई रज्जु भ्रमसे सर्प प्रतीत होने लगे है और जब दीपकका प्रकाश होय है, तब निश्चय हो जाय है कि, यह सर्प नहीं है ॥ ७ ॥

जिसको आत्मज्ञान नहीं होय है उसको प्रकाश भी नहीं होय है, फिर जगत्की प्रतीति किसप्रकार होय है? इस प्रश्नका उत्तर कहै हैं कि–

प्रकाशोमेनिजंरूपंनातिरिक्तोऽस्म्यहंततः॥
यदाप्रकाशतेविश्वंतदाहंभासएवहि॥ ८॥

अन्वयः–प्रकाशः मे निजम् रूपम् अहम् ततः

अतिरिक्तः न अस्मि। हि यदा विश्वं प्रकाशते तदा अहं भासः एव ॥ ८ ॥

अर्थः-नित्य बोधरूप प्रकाश मेरा (आत्माका) स्वाभाविक स्वरूप है, इसकारण मैं (आत्मा)प्रकाशसे भिन्न नहींहूँ; यहाँ शङ्का होय है कि, आत्मचैतन्य जब जगत्का प्रकाश है तो उसको अज्ञान किसप्रकार रहे है ? इसका समाधान यह है कि-जिसप्रकार स्वप्नमें चैतन्य अविद्याकी उपाधिसे कल्पित विषय सुखको सत्य माने है, तिससे चैतन्यमें किसीप्रकारका बोध नहीं होय है, आत्मचैतन्य सर्वकालमें है, परन्तु गुरुके मुखसे निश्चयपूर्वक समझे विना अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होय है, और आत्मा सत्य है यह वार्ता वेदादि शास्त्र संमत है, अर्थात् जगत्का आत्मा प्रकाश करै है यह सिद्धान्त है ॥ ८॥

शिष्य विचार करै है कि, मैं स्वप्रकाश हूँ तथापि अज्ञान करके मेरेविषे विश्व भासे है, यह बड़ाही आश्चर्य है, तिसका दृष्टान्तकेद्वारा समाधान करै हैं कि-

अहो विकल्पितं विश्वमज्ञानान्मयि भासते।
रूप्यं शुक्तौ फणी रज्जौ वारि सूर्य्यकरेयथा९

अन्वयः-अहो यथा शुक्तौ रूप्यम् रज्जौ फणी

सूर्य्यकरे वारि (तथा) अज्ञानात् विकल्पितम् विश्वम् मयि भासते ॥ ९ ॥

अर्थः-जिसप्रकार भ्रान्तिकरके सीपीमें रजत्की प्रतीति होयहै, जिसप्रकार रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होय है तथा जिसप्रकार सूर्य्यकी किरणोंमें जलकी प्रतीति होय है, तिसीप्रकार अज्ञानकरके कल्पित विश्व मेरेवि-षे भासै हैं ॥ ९ ॥

शिष्य आशङ्का करे है कि, सांख्यशास्त्रवालोंके म-तानुसार तो जगत् मायाका विकार है इसकारण जगत् मायासकाशसे उत्पन्न होय है, और अन्तमें मायाके विषेही लीन होजाय है, और आत्मा सकाशसे उत्पन्न नहीं होय है ? इस शंकाका गुरु समाधान करै हैं कि-

मत्तो विनिर्गतं विश्वं मय्येव लयमेष्यति। मृदि कुम्भो जले वीचिःकनके कटकं यथा१०

अन्वयः-इदम् विश्वं मत्तः विनिर्गतम् मयि एव ल-यम् एष्यति यथा कुम्भः मृदि वीचिः जले कटकम् कनके ॥ १० ॥

अर्थः-यह माया सहित जगत् आत्माके सकाशसे उत्पन्न हुआ है, और अन्तमें मायाके विषेही लीन होयगा, तहाँ दृष्टान्त दे हैं कि, जिसप्रकार घट मृत्तिकामें से उत्पन्न होय है, और अन्तमें मृत्तिकाके विषेही

लीन होजाय है, और जिसप्रकार तरङ्गजलमेंसे उ-त्पन्न होय हैं और अन्तमें जलके विषेही लीन होजायँ हैं. तथा जिसप्रकार कटक कुण्डलादि सुवर्णमेंसे उ-त्पन्न होय हैं और सुवर्णमेंही अन्तमें लीनहो जायँ हैं. तिसीप्रकार माया सहित जगत् आत्माके सकाशसे उत्पन्न होय है और अन्तमें मायाके विषेही लीन हो-जाय है; सोई श्रुतिमें भी कहा है "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति" ॥ १० ॥

शिष्य आशंका करे है कि, यदि जगत्का उपादान कारण ब्रह्म होयगा तब तो ब्रह्मके विषे अनित्यता आवै-गी, जिसप्रकार घट फूटै है और मृत्तिका बिखर जाय है, तिसीप्रकार जगत्के नष्ट होनेपर ब्रह्मभी छिन्न भि-न्न (विनाशी) हो जायगा ? इस शंकाका समाधान करते हुए गुरु कहे हैं कि—

अहो अहंनमो मह्यं विनाशोयस्य नास्तिमे।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तंजगन्नाशेपितिष्ठतः ११

अन्वयः—अहो अहम् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तम् (यत्) जगत् (तस्य) नाशे अपि यस्य मे विनाशः न अस्ति (तस्मै) मह्यम् नमः॥ ११ ॥

अर्थः—मैं (आत्मा ब्रह्म) संपूर्ण जगत्का उपा-दान कारणहूँ, तो भी मेरा नाश नहीं होय है यह बड़ा

आश्चर्य्य है. सुवर्ण कटक और कुण्डलका उपादान कारण होता है और कटक कुण्डलके टूटनेपर सुवर्ण विकारको प्राप्त होय है, परन्तु मैं तो जगत्का विवर्त्ता धिष्ठान हूँ, अर्थात् जिसप्रकार रज्जुमें सर्पकी भ्रान्ति होनेपर सर्प विवर्त्त कहावै है, और रज्जु अधिष्ठान कहावै है, तिसीप्रकार जगत् मेरे (आत्माके) विषे प्रतीति मात्र है; जिसप्रकार दुग्धका दधि वास्तविक अन्यथाभाव (परिणाम) होय है, तिसप्रकार जगत् मेरा परिणाम नहीं है, मैं सम्पूर्ण जगत्का कारण और अविनाशी हूँ, तिसकारण मैं अपने स्वरूप (आत्मा) को नमस्कार करताहूँ प्रलयकालमें ब्रह्मासे लेकर तृणपर्य्यन्त संपूर्ण जगत् नाशको प्राप्त हो जाय है, परन्तु मेरा (आत्माका) नाश नहीं होय है,इसविषय में श्रुतिका भी प्रमाणहै "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" अर्थात् ब्रह्म सत्य है; ज्ञानरूप है, आर अनन्त है ॥ ११ ॥

शिष्य आशंका करे है कि, सुख दुःखरूपी देहयुक्त आत्मा अनेकरूप है, तिसकारण जाय है और आवै है, फिर आत्माकी सर्व व्यापकता किसप्रकार सिद्ध होयगी, तिसका गुरु समाधान करे हैं कि–

अहो अहंनमोमह्यमेकोऽहंदेहवानपि।क्वचिन्न गन्ता नागन्ता व्याप्य विश्वमवस्थितः१२॥

अन्वयः-अहो अहम् (तस्मै) मह्यम् नमः। (यत्) देहवान् अपि एकः अहम् विश्वम् व्याप्य अवस्थितः न क्वचित् गन्ता न आगन्ता ॥ १२ ॥

अर्थः-मैं बड़ा आश्चर्यरूप हूँ, उसकारण मैं अपने (आत्मा) का नमस्कार करूँ हूँ, तहाँ शिष्य प्रश्न करे है कि, क्या आश्चर्य्य है? तिस गुरु उत्तर दें हैं कि, मैं (आत्मा) नाना प्रकारकरके शरीरोंमें निवास करके नाना प्रकारके सुख दुःखोंको भोगूँ हूँ, तथापि मैं एकरूप हूँ, तहाँ दृष्टान्त दिखाये हैं कि-जिसप्रकार जलसे भरे हुये अनेक पात्रोंमें भरे हुए जलके विषे शीत, उष्ण, सुगन्ध, दुर्गन्ध, शुद्ध, अशुद्ध, इत्यादि अनेक उपाधि रहती हैं, और उन अनेकों पात्रोंमें भिन्न सूर्य्यके प्रतिबिम्ब पड़ते हैं, तथापि वह सूर्य्य एकही होता है, और जलकी शीत उष्णादि उपाधियोंसे रहित होता इसीप्रकार मैं सम्पूर्ण विश्वमें व्याप रहा हूँ, तथापि जगत्की सम्पूर्ण उपाधियोंसे रहित हूँ, अर्थात् न कोई जाता है न कोई आता है और जाय है आवै है. इसप्रकारकी जो प्रतीति है सो अज्ञानवश है वास्तवमें नहीं है ॥ १२ ॥

शिष्य शंका करै है कि, जिस आत्माका देहसे सङ्ग है, वह असङ्ग किसप्रकार होसके है, तिसका गुरु समाधान करैं हैं कि-

अहोअहंनमोमह्यंदक्षोनास्तीहमत्समः ।
असंस्पृश्यशरीरेणयेनविश्वंचिरंधृतम् १३ ॥

अन्वयः-अहम् अहो (तस्मै) मह्यम् नमः इह मत्समः (कः अपि) दक्षः न अस्ति येन शरीरेण असंस्पृश्य (मया) चिरम् विश्वम् धृतम् ॥ १३ ॥

अर्थः-मैं आश्चर्य्यरूप हूँ इसकारण मेरे अर्थ नमस्कार है; क्योंकि इस जगत्में मेरी समान कोई चतुर नहीं है, अर्थात् अघट घटना करनेमें चतुर हूँ, क्योंकि मैं शरीरमें रहकर भी शरीरसे स्पर्श नहीं करता हूँ और शरीर कार्य्य करता हूँ, जिसप्रकार अग्नि घृतके पिण्डमें लीन न होकर भी घृतपिण्डको गलाकर रसरूप करदेय है, इसीप्रकार सम्पूर्ण जगत्में मैं लीन नहीं होता हूँ और सम्पूर्ण जगत्को चिरकाल धारण करता हूँ ॥ १३ ॥

शिष्य आशंका करे है कि, हे गुरो ! सम्बन्धके विना जगत् किसप्रकार धारण होय है ? भीत गृहकी छत्त आदिको धारण करै है परन्तु काष्ठ आदिसे उसका सम्बन्ध होय है, सो आत्मा विना सम्बन्धके जगत्को किसप्रकार धारण करै है इसका गुरु समाधान करै हैं कि-

अहोअहंनमोमह्यंयस्यमेनास्तिकिञ्चन ॥
अथवायस्यमेसर्वंयद्वाङ्मनसगोचरम् १४

अन्वयः- अहो अहम् यस्य मे (परमार्थतः) किञ्चन न अस्ति अथवा यत् वाङ्मनसगोचरम् (तत्) सर्वम् यस्य मे (सम्बधि अस्ति अतः) मह्यं नमः ॥ १४ ॥

अर्थः—अहो मैं बड़ा आश्चर्य्यरूप हूँ इसकारण अपने स्वरूपको नमस्कार करूं हूँ, आश्चर्य्यरूपता दिखाये हैं कि, परमार्थ दृष्टिसे तो मेरा किसीसे सम्बन्ध नहीं है, और विचार दृष्टिसे देखो तो मुझसे भिन्न भी कोई नहीं है, और यदि सांसारिक दृष्टिसे देखो तो जो कुछ मन वाणीसे विचारा जाय है वह सब मेरा सम्बन्धी है, परन्तु वह मिथ्या सम्बन्ध है, जिस-प्रकार सुवर्ण तथा कुण्डलका सम्बन्ध है, इसी-प्रकार मेरा और जगत्का सम्बन्ध है, अर्थात् मेरा सबसे सम्बन्ध है भी और नहीं भी है, इस कारण आश्चर्यरूप जो मैं तिस मेरे अर्थ नमस्कार है ॥ १४ ॥

त्रिपुटीरूप जगत् तो सत्यसा प्रतीत होय है। फिर जगत्का और आत्माका मिथ्या सम्बन्ध किस प्रकार कहा, इस शिष्यकी शङ्काका गुरु समाधान करैं है कि—

ज्ञानंज्ञेयंतथाज्ञातात्रितयंनास्तिवास्तवम् ।

अज्ञानाद्भातियत्रेदंसोऽहमस्मिनिरञ्जनः १५

अन्वयः—ज्ञानम् ज्ञेयम् तथा ज्ञाता (इदम्) त्रितयम् वास्तवम् न अस्ति यत्र इदम् अज्ञानात् भाति सः अहम् निरञ्जनः अस्मि ॥ १५ ॥

अर्थः—ज्ञान ज्ञेय तथा ज्ञाता, इन तीनोंका इकट्ठा नाम "त्रिपुटी" है, वह त्रिपुटी वास्तविक अर्थात् सत्य नहीं है, तिस त्रिपुटीका जिस मेरे (आत्माके) विषे मिथ्या सम्बन्ध अर्थात् अज्ञानसे प्रतीत है, वह मैं अर्थात् आत्मा तो निरञ्जन कहिये सम्पूर्ण प्रपञ्चसे रहित हूँ ॥ १५ ॥

शिष्य शंका करै है कि, यदि आत्मा निरञ्जन है तो उसको दुःखका सम्बन्ध किसप्रकार होय है, तिसका गुरु समाधान करै हैं—

द्वैतमूलमहोदुःखंनान्यत्तस्यास्तिभेषजम् ।
दृश्यमेतन्मृषासर्वमेकोऽहंचिद्रसोऽमलः १६

अन्वयः—अहो (निरञ्जनस्य अपि आत्मनः) द्वैतमूलम् दुःखम् (भवति) तस्य भेषजम् एतत् दृश्यम् सर्वम् मृषा अहम् एकः अमलः चिद्रसः (इति बोधात्) अन्यत् न अस्ति ॥ १६ ॥

अर्थः—सुखदुःख भ्रान्ति मात्र है, वास्तविक नहीं, निरञ्जन आत्माके विषे द्वैतभ्रमसे सुखदुःख भासै हैं

वास्तवमें आत्माके विषे सुखदुःख कुछभी नहीं होय हैं. तहाँ शिष्य प्रश्न करै है कि–हे गुरो ! द्वैत भ्रमकी औषधि कहिये जिसके सेवन करनेसे द्वैतभ्रमकी निवृत्ति होय ? तिसका गुरु उत्तर दें हैं कि–हे शिष्य ! मैं आत्मा हूँ, अमलहूँ माया और मायाका कार्य जो जगत् तिससे रहित चिन्मात्र अद्वितीयरूप हूँ, और दृश्यमान यह सम्पूर्ण संसार जड़ और मिथ्या है, सत्य नहीं है, ऐसा ज्ञान होनेसे द्वैतभ्रम नष्ट होजाता है, इसके विना दूसरीद्वैत भ्रमसे उत्पन्न हुए दुःखके दूर करनेकी अन्य औषधि नहीं है ॥ १६ ॥

शिष्य प्रश्न करै है कि, आत्माके विषे द्वैतप्रपञ्चका अध्यास किसप्रकारहुआ है और वह कल्पित है या वास्तविक है ? तिसका गुरु समाधान करैं हैं कि–

बोधमात्रोऽहमज्ञानादुपाधिः कल्पितोमया ।
एवंविमृशतोनित्यंनिर्विकल्पेस्थितिर्मम १७

अन्वयः–अहम् बोधमात्रः मया अज्ञानात् उपाधिः कल्पितः । एवम् नित्यम् विमृशतः मम निर्विकल्पे स्थितिः (प्रजाता) ॥ १७ ॥

अर्थः–मैं बोधरूप चैतन्य स्वरूप हूँ, परन्तु मैंने अपने विषे अज्ञानसे उपाधि (अहङ्कारादि द्वैत प्रपञ्च) कल्पना करा है, अर्थात् मैं अखण्डानन्दब्रह्म नहीं हूँ

किन्तु देहहूँ यह माना है. इस कारण नित्य विचार करके मेरी निर्विकल्पक अर्थात् वास्तविक निज स्वरूप (ब्रह्म) के विषे स्थिति हुई है ॥ १७ ॥

शिष्य शङ्का करै है कि, हे गुरो ! यदि केवल विचार करनेहीसे मुक्ति होय है तब तो मुक्तिका विनाश होना चाहिये, क्योंकि जब विचार नष्ट होय, तब मुक्तिकाभी नाश होना चाहिये, और यदि कहो कि, विचारके विनाही मुक्ति हो जाय है तब तो गुरु और शास्त्रके उपदेशको प्राप्त न होनेवाले पुरुषोंकी भी मुक्ति होनी चाहिये ? तिसका गुरु समाधान करै हैं कि—

न मे बन्धोऽस्ति मोक्षो वा भ्रान्तिः शान्ता निराश्रया । अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—मे बन्धः वा मोक्षः न अस्ति अहो मयि स्थितम् (अपि) विश्वं वस्तुतः मयि न स्थितम् (इति विचारतः अपि) निराश्रया भ्रान्तिः (एव) शान्ता ॥ १८ ॥

अर्थः—यदि शुद्ध विचारकी दृष्टिसे देखो तो मेरे बन्ध नहीं है, और मोक्षभी नहीं है अर्थात् विचार दृष्टिसे न आत्माका बन्ध होय है न मोक्ष होयहै; क्योंकि मैं (आत्मा) नित्य चित्स्वरूपहूँ, तहाँ शिष्य शङ्कित

होकर प्रश्न करै है कि, हे गुरो ! वेदान्तशास्त्रविचारका जो फल है सो कहिये. तहां गुरु कहैं हैं कि भ्रान्तिकी निवृत्तिही वेदान्त शास्त्रके विचारका फल है, क्योंकि बड़ा आश्चर्य्य है जो मेरे विषे स्थित भी जगत् वास्तवमें मेरेविषे स्थित नहीं है इसप्रकार विचार करनेपर भी भ्रान्तिमात्र ही नष्ट हुई परमानन्दकी प्राप्ति नहीं हुई इससे प्रतीति होय है कि, भ्रान्तिकी निवृत्तिही शास्त्र विचारका फल है, तहां शिष्य करै है कि, हे गुरो ! भ्रान्ति कैसी थी जो विचार करनेपर तुरन्तही नष्ट हो गई, तिसका गुरु उत्तर दे हैं कि, भ्रान्ति निराश्रय अर्थात् अज्ञानरूप थी सो विचारसे नष्ट होगई ॥ १८ ॥

शिष्य शंका करै है उस मुक्त पुरुषके विषे भी प्रपञ्च का उदय होना चाहिये, क्योंकि रज्जु होती है तो उसमें कभी अन्धकारके विषे सर्पकी भ्रान्ति होही जाती है, तिसीप्रकार अधिष्ठान जो ब्रह्म है तिसके विषे द्वैत (प्रपञ्च) की कल्पना होजाय ? इस शंकाका गुरु समाधानकरैं हैं कि—

सशरीरमिदंविश्वं न किञ्चिदिति निश्चितम्। शुद्धचिन्मात्र आत्मा च तत्कस्मिन्कल्पनाधुना ॥ १९ ॥

अन्वयः—इदम् शरीरम् विश्वं किञ्चित् न इति

निश्चितम् आत्मा च शुद्धचिन्मात्रः तत् अधुना कल्पना कस्मिन् (स्यात्) ॥ १९ ॥

अर्थः—यह शरीर सहित संपूर्ण जगत् जो प्रतीत होय है, सो कुछ नहीं है, अर्थात् न सत् है, न असत् है, क्योंकि सब ब्रह्मरूप है, सोई श्रुतिमें भी कहा है "नेह नानास्तिकिञ्चन" अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मरूपही है, आत्मा शुद्ध अर्थात् मायारूपी मलरहित और चित्स्वरूप है, इसकारण किस अधिष्ठानमें विश्वकी कल्पना होय ? ॥ १९ ॥

शिष्य शंका करै है कि, हे गुरो ! यदि सम्पूर्ण प्रपञ्च मिथ्या है, तब तौ ब्राह्मणादिवर्ण और मनुष्यादि जातिभी अवास्तविक होंगे, और वर्णजातिके अर्थ प्रवृत्त होनेवाले विधिनिषेध शास्त्रभी अवास्तविक होंगे, और विधिनिषेध शास्त्रोंके विषे वर्णनकरे हुए स्वर्ग नरक तथा स्वर्गकेविषे प्रीति और नरकका भयभी अवास्तविक होजायँगे, और शास्त्रोंके विषे वर्णन करे हुए बन्ध मोक्ष भी अवास्तविक अर्थात् मिथ्या हो जायँगे ? तिसका गुरु समाधान करै हैं कि—

शरीरं स्वर्गनरकौ बन्धमोक्षौ भयंतथा । कल्पनामात्रमेवैतत्किंमेकार्य्यंचिदात्मनः ॥ २० ॥

अन्वयः-शरीरम् स्वर्गनरकौ बन्धमोक्षौ तथा भयम् एतत् कल्पनामात्रमेव चिदात्मनः मे एतैः किम् कार्य्यम् ॥ २० ॥

अर्थः-हे शिष्य तैंने जो शङ्का करी सो शरीर, स्वर्ग, नरक, बन्ध मोक्ष तथा भय आदि सम्पूर्ण मिथ्या हैं, तिन शरीरादिके साथ सच्चिदानन्दस्वरूप जो मैं तिससेरा कोई कार्य्य नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण विधि निषेधरूप कार्य्य अज्ञानी पुरुषके होय हैं, ब्रह्मज्ञानीके नहीं ॥ २० ॥

अब इसप्रकार वर्णन करते हैं कि, जिसप्रकार स्वर्ग नरक आदिको अवास्तविक वर्णन करा तिसीप्रकार यह लोकभी अवास्तविक है इसकारण इसलोकमें मेरी प्रीति नहीं होय है-

अहो जनसमूहेऽपि न द्वैतं पश्यतो मम ।
अरण्यमिवसंवृत्तंकरतिंकरवाण्यहम् ॥ २१ ॥

अन्वयः-अहो न द्वैतम् पश्यतः मम जनसमूहे अपि अरण्यम्-इव संवृत्तम अहम् क्वरतिम् करवाणि ॥२१॥

अर्थः-बडे आश्चर्यकी वार्त्ता है कि, मैं जनसमूहमें निवास करूँ हूँ, परन्तु मेरे मनको वह जनसमूह अरण्यसा प्रतीत होय है, सो मैं इसअवास्तविक कहिये मिथ्याभूत संसारके विषे क्या प्रीति करूं ? ॥ २१ ॥

शिष्य शङ्का करै है कि, हे गुरो ! पुरुष शरीरके विषे मैं हूँ मेरा है इत्यादि व्यवहार करके प्रीति करै है इसकारण शरीरके विषे तो स्पृहा करनीही होयगी, तिसका समाधान करैं हैं कि–

नाहंदेहो न मेदेहोजीवोनाहमहंहिचित् । अयमेवहिमेबन्धआसीद्याजीवितेस्पृहा २२

अन्वयः–अहम् देहः नमे देहः न अहम् जीवः न हि अहम् चित् मे अयम् एव हि बन्धः या जीविते स्पृहा आसीत् ॥ २२ ॥

अर्थः–देह मैं नहीं हूँ, क्योंकि देह जड़ है और देह मेरा नहीं है, क्योंकि मैं तो असङ्ग हूँ, और जीव जो अहङ्कार सो मैं नहीं हूँ; तहाँ शङ्का होय है कि, तू कौन है ? तिसके उत्तरमें कहै हैं कि, मैं तो चैतन्यस्वरूप ब्रह्म हूँ । तहाँ शंका होय है कि, यदि आत्मा चैतन्यस्वरूप है देहादिरूप जड़ नहीं है तो फिर ज्ञानी पुरुषोंकी भी जीवनमें इच्छा क्यों होय है ? तिसका समाधान करैं हैं कि, यह जीवनेकी जो इच्छा है सोई बन्धन है, दूसरा बन्धन नहीं है, क्योंकि, पुरुष जीवनके निमित्तही सुवर्णकी चोरी आदि अनेकप्रकारके अनर्थ करके कर्म्मानुसार संसारबन्धनमें बँधै है, और सच्चिदानन्द स्वरूप-

आत्माके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान होनेपर पुरुषकी जीवनमें स्पृहा नहीं रहै है ॥ २२ ॥

जब पुरुषको सबके अधिष्ठानरूप आत्मस्वरूका ज्ञान होय है, तब कहै है कि-

अहोभुवनकल्लोलैर्विचित्रैर्द्राक्समुत्थितम् ।
मय्यनन्तमहाम्भोधौचित्तवातेसमुद्यते २३॥

अन्वयः-अहो अनन्तमहाम्भोधौ मयि चित्तवाते समुद्यते विचित्रैः भुवनकल्लोलैः द्राक्समुत्थितम् ॥२३॥

अर्थः-अहो ! बड़े आश्चर्यकी वार्त्ता है कि, मैं चैतन्य समुद्रस्वरूप हूँ, और मेरे विषे चित्तरूपी वायुके योगसे नानाप्रकारके ब्रह्माण्डरूपी तरङ्गौं उत्पन्न होय हैं, अर्थात् जिसप्रकार जलसे तरङ्गौं भिन्न नहीं होय हैं, तिसीप्रकार ब्रह्माण्ड मुझसे भिन्न नहीं है॥२३॥

अब प्रारब्ध कर्म्मोंके नाशकी अवस्था दिखाये हैं कि-

मय्यनंत महाम्भोधौ चित्तवातेप्रशाम्यति ।
अभाग्याज्जीववणिजोजगत्पोतोविनश्वरः॥

अन्वयः-अनन्तमहाम्भोधौ मयि चित्तवाते प्रशाम्यति (सति) जीववणिजः अभाग्यात् जगत्पोतः विनश्वरः (भवति) ॥ २४ ॥

अर्थः-मैं सर्वव्यापक चैतन्यस्वरूप समुद्र हूँ, तिस मेरे विषेचित्तवायुके अर्थात् संकल्प विकल्पा-

त्मक मनरूप वायुके शान्त होनेपर अर्थात् संकल्पा-दिरहित होनेपर जीवात्मारूप व्यापारीके अभाग कहिये प्रारब्धके नाशरूप विपरीत पवनसे जगत् समुद्रके विषे लगा हुआ शरीर आदिरूप नौकाका समूह विनाशवान् होता है ॥ २४ ॥

अब सम्पूर्ण प्रपञ्चको मिथ्या जानकर कहै हैं कि—

मय्यनन्तमहाम्भोधावाश्चर्यंजीववीचयः ।
उद्यन्तिघ्नन्तिखेलन्तिप्रविशन्तिस्वभावतः ॥

अन्वयः—आश्चर्य्यम् (यत्) अनन्तमहाम्भोधौ मयि जीववीचयः स्वभावतः उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति प्रविशन्ति ॥ २५ ॥

अर्थः—आश्चर्य्य है कि, निष्क्रिय, निर्विकार मुझ चैतन्यसमुद्रके विषे अविद्याकाम कर्म्मरूप स्वभा-वसे जीवरूपी तरङ्गें उत्पन्न होय हैं, और परस्पर शत्रु-भाव करके ताड़न करै हैं, और कोई मित्रभावसे पर-स्पर क्रीड़ा करै हैं और अविद्याकाम कर्म्मके नाश होनेपर मेरेविषे लीन होजायँ हैं, अर्थात् जीवरूपी तरङ्गें अविद्या बन्धनसे उत्पन्न होय हैं, वास्तवमें चिद्रूप हैं, जिसप्रकार घटाकाश महाकाशमें लीन होजाय है, तिसप्रकार मेरेविषे सम्पूर्ण जीव लीन होजायँ हैं, यही ज्ञान है ॥ २५ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथात्मजपण्डितरामस्वरूपप्रणीतया सान्वयभाषाटीकया सहितं शिष्येणोक्त मात्मानुभवोल्लासपञ्चपञ्चविंशतिकं नाम द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

अथ तृतीयं प्रकरणम् ३.

आत्मज्ञानके अनुभव करके युक्त भी अपने शिष्यको व्यवहारमें स्थित देखकर उसके आत्मज्ञानानुभवकी परीक्षा करनेके निमित्त उसकी व्यवहारके विषे स्थितिकी निन्दा करके आत्मानुभवात्मक स्थितिका उपदेश करैं कि–

अविनाशिनमात्मानमेकं विज्ञायतत्त्वतः ।
तवात्मज्ञस्यधीरस्यकथमर्थार्जने रतिः ॥१॥

अन्वयः–हे शिष्य ! अविनाशिनम् एकम् आत्मानम् विज्ञाय तत्त्वतः आत्मज्ञस्य धीरस्य तव अर्थार्जने रतिः कथम् (लक्ष्यते)॥ १ ॥

अर्थः–हे शिष्य ! अविनाशि कहिये त्रिकालमें सत्यस्वरूप आत्माको किसी देशकालमें भेदको नहीं

प्राप्त होनेवाला जानकर, यथार्थरूपसे आत्मज्ञानी धैर्य्यवान् जो तू तिस तेरी व्यावहारिक अर्थके संग्रह करनेमें प्रीति किसकारण देखनेमें आवै है ॥ १ ॥

विषयके विषे जो प्रीति होय है सो आत्माके अज्ञानसे होय है इस वार्त्ताको दृष्टान्त और युक्तिपूर्वक दिखाये हैं—

आत्मज्ञानादहोप्रीतिर्विषयभ्रमगोचरे।
शुक्तेरज्ञानतोलोभोयथारजतविभ्रमे ॥ २ ॥

अन्वयः—अहो (शिष्य)! यथा शुक्तेः अज्ञानतः रजतविभ्रमे लोभः (भवति तथा) आत्मज्ञानात् विषयभ्रमगोचरे प्रीतिः (भवति) ॥ २ ॥

अर्थः—अहो शिष्य! जिसप्रकार आत्माके सीपीका ज्ञान न होनेसे रजतकी भ्रान्ति करके लोभ होय है, तिसीप्रकार आत्माके अज्ञानसे भ्रान्ति ज्ञान करके प्रतीत होनेवाले विषयोंमें प्रीति होय है, जिनको आत्मज्ञान होय है, उन ज्ञानियोंकी विषयोंमें कदापि प्रीति नहीं होय है ॥ २ ॥

ऊपर इसप्रकार कहा है कि, विषयोंके विषे जो प्रीति होय है, सो अज्ञान करके होय है, अब इस वार्ताका वर्णन करै हैं कि, संपूर्ण अध्यस्तको अधिष्ठानभूत जो आत्मा तिसके जाननेपर फिर विषयोंके विषे प्रीति नहीं होय है—

विश्वंस्फुरतियत्रेदंतरंगाइवसागरे ॥
सोऽहमस्मीतिविज्ञायकिंदीनइवधावसि ३॥

अन्वयः—सागरे तरङ्गा—इव यत्र इदम् विश्वम् स्फुरति सः अहम् अस्मि; इति विज्ञाय दीनः इव किम् धावसि ॥ ३ ॥

अर्थः—जिसप्रकार समुद्रके विषे तरङ्गें स्फुरैं हैं, अर्थात् अभिन्नरूप होय हैं, तिसीप्रकार जिस आत्माके विषे यह विश्व अभिन्नरूप है, वह निर्विशेष आत्मा मैं हूँ, इसप्रकार साक्षात् करके दीनपुरुषकी समान मैं हूँ, और मेरा है इत्यादि अभिमान करके क्यों दौड़ै है ? ॥ ३ ॥

ऊपरके तीन श्लोकोंमें शिष्यकी व्यवहारावस्थाकी निन्दा करी अव सम्पूर्णही ज्ञानियोंकी व्यवहारावस्थामें स्थितिकी निन्दा करै हैं कि—

श्रुत्वापिशुद्धचैतन्यमात्मानमतिसुन्दरम् ।
उपस्थेऽत्यन्तसंसक्तोमालिन्यमधिगच्छति

अन्वयः—शुद्धचैतन्यम् अतिसुन्दरम् आत्मानम् श्रुत्वा अपि उपस्थे अत्यन्तसंसक्तः (आत्मज्ञः) मालिन्यम् अधिगच्छति ॥ ४ ॥

अर्थः—गुरुके मुखसे वेदान्तवाक्यों से अतिसुन्दर, शुद्ध चैतन्य आत्माको श्रवण करके तथा साक्षात्करके तदनन्तर समीपस्थ विषयोंके विषे प्रीति करनेवाला आत्म-

ज्ञानी मालिन्य कहिये मूढ़पनेको प्राप्त होजाता है ॥ ४ ॥

फिरभी ज्ञानीके विषयोंमें प्रीति करनेको निन्दा करै हैं कि—

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
मुनेर्जानतआश्चर्य्यंममत्वमनुवर्त्तते ॥ ५ ॥

अन्वयः—सर्वभूतेषु च आत्मानम् आत्मनि च सर्वभूतानि जानतः मुनेः (विषयेषु) ममत्वम् अनुवर्त्तते (इति) आश्चर्य्यम् ॥ ५ ॥

अर्थः—ब्रह्मसे लेकर तृणपर्य्यन्त सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे अधिष्ठानरूप करके आत्मा विद्यमान है, और सम्पूर्ण प्राणी आत्माके विषे अध्यस्त अर्थात् कल्पित हैं, जिस प्रकार कि, रज्जुके विषे सर्प कल्पित होय है, इसप्रकार जानते हुएभी मुनिकी विषयोंके विषे ममता होय है, यह बड़ाही आश्चर्य्य है. क्योंकि सीपीके विषे रजतको कल्पित जानकरभी ममता करना मूर्खताही होती है ॥ ५ ॥

आत्मज्ञानीकी विषयोंके विषे प्रीति करनेकी निन्दा करते हुए कहै हैं कि—

आस्थितःपरमाद्वैतं मोक्षार्थेऽपिव्यवस्थितः
आश्चर्य्यं कामवशगोविकलःकेलिशिक्षया ६

अन्वयः—परमाद्वैतम् आस्थितः (तथा) मोक्षार्थे

व्यवस्थितः अपि कामवशगः (सन्) केलिशिक्षया विकलः (दृश्यते इति) आश्चर्य्यम् ॥ ६ ॥

अर्थः—परम अद्वैत अर्थात् सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदशून्य जो ब्रह्म तिसका आश्रय, और मोक्षरूपी सच्चिदानन्दस्वरूपके विषे विवास करनेवाला पुरुष कामवश होकर नानाप्रकारकी क्रीड़ाके अभ्यास करके अर्थात् नाना प्रकारके विषयोंमें लवलीन होकर विकल देखनेमें आवै हैं, यह बडाही आश्चर्य्य है ॥ ६ ॥

अब इस वार्त्ताका वर्णन करै हैं कि, विवेकी पुरुषको सर्वथा विषयवासनाका त्याग करना चाहिये—

उद्भूतं ज्ञानदुर्मित्रमवधार्य्यातिदुर्बलः।
आश्चर्य्यं काममाकांक्षेत्कालमन्तमनुश्रितः॥७॥

अन्वयः—अन्तम् कालम् अनुश्रितः अतिदुर्बलः (ज्ञानी) उद्भूतम् ज्ञानदुर्मितम् अवधार्य्य (अपि) कामम् आकांक्षेत् (इति) आश्चर्य्यम् ॥ ७ ॥

अर्थः—उद्भूत कहिये उत्पन्न होनेवाला जो काम वह महाशत्रु ज्ञानको नष्ट करनेवाला है, ऐसा विचारकरके भी अतिदीन होकर ज्ञानी विषयभोगकी आकाङ्क्षा करै है, यह बड़ेही आश्चर्य्यकी वार्त्ता है, क्योंकि जो पुरुष विषयवासनामें लवलीन होता है, वह कालग्रास होता है, अर्थात् क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है, इस

कारण ज्ञानी पुरुषको विषयतृष्णा नहीं रखनी चाहिये ७

अब इस वार्त्ताका वर्णन करैं हैं कि, ज्ञानी पुरुषको विषयोंको वियोग होनेपर शोक नहीं करना चाहिये—

इहामुत्र विरक्तस्य नित्यानित्यविवेकिनः ।
आश्चर्य्यंमोक्षकामस्य मोक्षादेव विभीषिका

अन्वयः—इह अमुत्र विरक्तस्य नित्यानित्यविवेकिनः मोक्षकामस्य मोक्षात् एव विभीषिका (भवति इति) आश्चर्य्यम् ॥ ८ ॥

अर्थः—जिसको इसलोक और परलोकके सुखसे वैराग्य हो गया है, और आत्मा नित्य है तथा जगत् अनित्य है, इसप्रकार जिसको ज्ञान हुआ है, और मोक्ष जो सच्चिदानन्दकी प्राप्ति तिसके विषे जिसकी अत्यन्त अभिलाषा है, वह पुरुषभी बलवान् देह आदि असत् स्त्री पुत्रादिके वियोगसे भयभीत होय है; यह बड़ेही आश्चर्य्यकी वार्त्ता है, स्वप्नमें अनेक प्रकारके सुख देखनेपरभी जाग्रत् अवस्थामें वह सुख नहीं रहैं हैं तो उन सुखोंका कोई पुरुष शोक नहीं करै है, तिसी प्रकार स्त्री पुत्र धन आदि असत् वस्तुका वियोग होनेपर शोक करना योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

अब इस वार्त्ताका वर्णन करैं हैं कि, ज्ञानीको शोक हर्ष नहीं करने चाहिये—

धीरस्तुभोज्यमानोऽपिपीड्यमानोऽपिसर्वदा।
आत्मानंकेवलंपश्यन्नतुष्यतिनकुप्यति॥९॥

अन्वयः-धीरः तु (लोकैः विषयान्) भोज्यमानः अपि (निन्दादिना) पीड्यमानः अपि केवलम् आत्मानम् पश्यन् न तुष्यति न कुप्यति ॥९॥

अर्थः-ज्ञानी पुरुषोंको जगत्के विषे पुण्यवान् पुरुष नानाप्रकारके भोग कराये हैं, परन्तु वह ज्ञानी पुरुष तिससे हर्षको नहीं प्राप्त होय हैं, और पापी पुरुष पीड़ा दें हैं तो उससे शोक नहीं करैं हैं, क्योंकि वह ज्ञानीपुरुष जानै है कि, आत्मा सुख दुःख रहित है, अर्थात् आत्माको कदापि हर्ष शोक नहीं होसकै हैं॥९॥

और हर्ष शोकके हेतु जो स्तुति निन्दा आदि सो तो शरीरके धर्म्म हैं, और शरीर आत्मासे भिन्न है फिर ज्ञानीको हर्ष शोक किसप्रकार होसकैं हैं इस वार्त्ताका वर्णन करैं हैं-

चेष्टमानं शरीरं स्वं पश्यत्यन्यशरीरवत्।
संस्तवेचापिनिन्दायांकथंक्षुभ्येन्महाशयः॥

अन्वयः-(यः) चेष्टमानम् स्वम् शरीरम् अन्यशरीरवत् पश्यति (सः) महाशयः संस्तवे अपि च निन्दायाम् कथम् क्षुभ्येत् ॥ १० ॥

अर्थः-जो ज्ञानीपुरुष चेष्टा करनेवाले अपने शरी-

रको अन्यपुरुषके शरीरकी समान आत्मासे भिन्न देखै है, वह महाशय स्तुति और निन्दाके विषे किस प्रकार हर्ष शोकरूप क्षोभको प्राप्त होयगा ? अर्थात् नहीं प्राप्त होयगा ॥ १०

जिसका मरण होय है, और जो बंध करै है यह दोनों अनित्य हैं इसप्रकार जाननेके कारण ज्ञानीको मृत्युकालके समीप होनेपरभी भय किसप्रकार होसकै है इस वार्त्ताका वर्णन करें हैं—

मायामात्रमिदं विश्वं पश्यन्विगतकौतुकः ।
अपिसन्निहितेमृत्यौकथंत्रस्यातिधीरधीः ११॥

अन्वयः—इदम् विश्वम् मायामात्रम् (इति) पश्यन् विगतकौतुकः धीरधीः मृत्यौ सन्निहिते अपि कथम् त्रस्यति ॥ ११ ॥

अर्थः—यह दृश्यमान विश्व मायामात्र कहिये मिथ्यारूप है इसप्रकार देखता हुआ, इस कारणही यह शरीर आदि विश्व कहाँसे उत्पन्न हुआ है, और कहाँ लीन होयगा इसप्रकार विचार नहीं करनेवाला ज्ञानी पुरुष मृत्युके समीप आनेपरभी भयभीत नहीं होयहै ११

अब ज्ञानीका सर्वकी अपेक्षा उत्कृष्टपना दिखाते हैं कि—

निःस्पृहंमानसंयस्यनैराश्येऽपिमहात्मनः ।

तस्यात्मज्ञानतृप्तस्यतुलनाकेनजायते ॥१२॥

अन्वयः-नैराश्ये अपि यस्य मानसम् निःस्पृहम् (भवति तस्य) आत्मज्ञानतृप्तस्य महात्मनः केन (समम्) तुलना जायते ? ॥ १२ ॥

अर्थः-मैं ब्रह्मरूप हूँ इसप्रकार ज्ञान होनेपर जिसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होगये हैं ऐसा जो महात्मा ज्ञानी पुरुष तिसका मन मोक्षके विषे भी निराश होता है, अर्थात् वह मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं करता है, ऐसे ज्ञानीकी किससे तुलना करीजाय, अर्थात् ज्ञानीकी तुल्य कोई भी नहीं होय है ॥ १२ ॥

ज्ञानी पुरुषको "यह ग्रहण करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है" इसप्रकार व्यवहार नहीं करना चाहिये, इस वार्त्ताका वर्णन करै हैं-

स्वभावादेव जानाति दृश्यमेतन्न किञ्चन ।
इदंग्राह्यमिदंत्याज्यंसकिंपश्यतिधीरधीः१३

अन्वयः-स्वभावात्-एव (इदम्) दृश्यम् किञ्चन न (इति) जानाति सः धीरधीः इदम् ग्राह्यम् इदम् त्याज्यम् (इति) किम् पश्यति ॥ १३ ॥

अर्थः-स्वभावसेही अर्थात् अपनी सत्ता करकेही जिस प्रकार सीपीके विषे रजत कल्पनामात्र होय है, तिसीप्रकार यह दृश्यमान द्वैतप्रपञ्च मिथ्यारूप है,

जगत् कल्पित है अर्थात् सत् है न असत् इसप्रकार जाननेवाले ज्ञानीकी बुद्धि धैर्य्यसम्पन्न होजाय है, तो भी वह ज्ञानी "यह वस्तु ग्रहण करने योग्य है, यह वस्तु त्यागने योग्य है" इस प्रकारका व्यवहार क्यों करै है, यह बड़ेही आश्चर्य्यकी वार्त्ता है, अर्थात् ज्ञानी पुरुषको कदापि यह वस्तु त्यागने योग्य है, यह वस्तु ग्रहण करने योग्य है इसप्रकार व्यवहार नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥

उपरोक्त विषयमें हेतु कहै है कि--

अन्तस्त्यक्तकषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निरा-
शिषः ॥ यदृच्छयागतो भोगो न दुःखा-
य न तुष्टये ॥ १४ ॥

अन्वयः--अन्तस्त्यक्तकषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः यदृच्छया आगतः भोगः दुःखाय न (भवति) तुष्टये (च) न (भवति) ॥ १४ ॥

अर्थः--अन्तःकरणके रागद्वेषादिकषायोंको त्यागनेवाले और शीत उष्णादि द्वन्द्वरहित तथा विषमात्र-की इच्छा करके रहित जो ज्ञानीपुरुष तिसको दैव गतिसे प्राप्त हुआ भोग न दुःखदायक होय है और न प्रसन्न करनेवाला होय है ॥ १४ ॥

इतिश्रीमदष्टावक्रविरचितायां ब्रह्मविद्यायां पश्चिमोत्तर
देशीय मुरादाबादवास्तव्य भारद्वाज गोत्रोद्भवगौ-
ड़वंशावतंस श्रीयुत भोलानाथात्मज पण्डित
रामस्वरूप प्रणीतया सान्वयभाषाटीकया
सहितमाक्षेपद्वारोपदेशकं नाम तृतीयं
प्रकरणं समाप्तिमितम् ॥ ३ ॥

अथ तुरीयं प्रकरणम् ४.

इसप्रकार श्रीगुरुने शिष्यकी परीक्षा लेनेके निमित्त आक्षेप करे, अब तिसके उत्तरमें शिष्य गुरुके प्रति इस प्रकार कहे है कि–

हन्तात्मज्ञस्य धीरस्य खेलतो भोगलीलया।
नहि संसारवाहीकैर्मूढैः सह समानता ॥१ ॥

अन्वयः–हन्त भोगलीलया खेलतः आत्मज्ञस्य धीरस्य संसारवाहीकैः मूढैः सह समानता न–हि ॥ १ ॥

अर्थः–ज्ञानी सम्पूर्ण व्यवहारोंको मिथ्या जानै है, और प्रारब्धानुकूल नानाप्रकारके जो भोग प्राप्त होय हैं उनको आत्मविलास मानै है. आनन्दकी वार्त्ता है कि, जो आत्मज्ञानी है वह अपने आत्माको सम्पूर्ण जगत्-का अधिष्ठान जानै है, वही धैर्य्यवान् है, अर्थात् उसका चित्त विषयोंमें आसक्त नहीं होय है, प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए विषयोंकी क्रीड़ाके विषे रमण करनेवाले तिस

ज्ञानाकी संसारके विषे देहाभिमान करनेवाले मूर्खोंक- रके तुल्यता नहीं होय है, सोई गीताके विषे श्रीकृष्ण भगवान्ने कहाहै-"तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्म्म- विभागयोः। गुणा गुणेषु वर्त्तन्त इति मत्त्वा न सज्जते-" अर्थात् आत्मज्ञानी सम्पूर्ण व्यवहारोंमें रहैहै, परन्तु किसी कार्य्यका अभिमान नहीं करै है, क्योंकि वह जानै है कि, गुण गुणोंके विषे वर्त्तैं हैं, मेरी कोई हानि नहीं- है मैं तो साक्षी हूँ ॥ १ ॥

तहाँ शङ्का होय है कि, सांसारिक व्यवहारोंका वर्त्ताव करनेवाला ज्ञानी संसारी पुरुषकी तुल्य क्यौं नहीं होयहै, तिसका समाधान करैं हैं कि-

यत्पदंप्रेप्सवोदीनाः शक्राद्याः सर्वदेवताः ।
अहोतत्रस्थितोयोगीनहर्षमुपगच्छति॥ २ ॥

अन्वयः-अहो शक्राद्याः सर्वदेवताः यत्पदम् प्रेप्सवः (सन्तः) दीनाः वर्त्तन्ते तत्र स्थितः योगी हर्षम् न उपगच्छति ॥ २ ॥

अर्थः-बड़े आश्चर्य्यकी वार्त्ता है, हे गुरो ! इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता जिस आत्मपदकी प्राप्तिकी इच्छा करते हुये आत्मपदकी प्राप्ति न होनेसे दीनताको प्राप्त होतेहैं, तिस सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मोपदके विषे स्थित अर्थात् तत्-त्वम् पदार्थके ऐक्यज्ञानसे आत्मपदके विषे वर्त्तमान आत्मज्ञानी विषयभोगसे सुखको नहीं

प्राप्तहोय है, और तिसविषयसुखका नाश होनेपर शोक नहीं करै है ॥ २ ॥

अब यह वर्णन करैं हैं कि, आत्मज्ञानी पुण्य और पाप करके लिप्त नहीं होय है--

तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्यांस्पर्शोह्यन्तर्न जायते
नह्याकाशस्यधूमेनदृश्यमानापिसङ्गतिः॥३॥

अन्वयः--(यथा) हि आकाशस्य धूमेन (सह) दृश्यमाना अपि (सङ्गतिः) न (अस्ति तथा) हि तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्याम् अन्तः स्पर्शः न जायते ॥ ३ ॥

अर्थः -'तत्–त्वं' पदार्थकी एकताको जाननेवाले तत्त्वज्ञानीको अन्तःकरणके धर्म्म जो पुण्य पाप तिनसे सम्बंध नहीं होयहै, वह वेदोक्त विधिनिषेधके बन्धनमें नहीं होयहै, क्योंकि जिसको आत्मज्ञान होजाताहै, उसके अन्तःकरणमें पाप पुण्यका सम्बन्ध नहीं होयहै, जिसप्रकार धूम आकाशमें जायहै, परन्तु उसधूमका आकाशसे सम्बन्ध नहीं होयहै, गीताके विषे कहाहै कि, "ज्ञानाग्निः सर्वकर्म्माणि भस्मसात्कुरुते तथा" अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्म्मोंको भस्म करदेयहै ३॥

तहां शंका होयहै कि, ज्ञानी कर्म्म करैहै, और उसको पाप पुण्यका स्पर्श नहीं होयहै, यह कैसे होसकैहै ? तिसका समाधन करैं हैं कि–

आत्मैवेदं जगत्सर्वं ज्ञातंयेनमहात्मना ।
यदृच्छयावर्त्तमानंतंनिषेद्धुंक्षमेतकः ॥ ४ ॥

अन्वयः--येन महात्मना इदम् सर्वम् जगत् आत्मा एव (इति) ज्ञातम् तम् यदृच्छया वर्त्तमानम् कः निषेद्धुम् क्षमेत ॥ ४ ॥

अर्थः--जिस ज्ञानी महात्माने "यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् आत्मा ही है" इसप्रकार जानलिया, और तदनन्तर प्रारब्धके वशीभूत होकर वर्त्तै है, उसज्ञानीको कोई रोक नहीं सकै है, अर्थात् वेदवचनभी ज्ञानीको न रोकसकै हैं न प्रवृत्त करसकै हैं. क्योंकि "प्रबोधनीय एवासौ सुप्तो राजेव बन्दिभिः" अर्थात् जिसप्रकार बन्दी (भाट) राजाके चरित्रोंका वर्णन करैं हैं तिसीप्रकार वेदभी आत्मज्ञानीका बखान करैं हैं ॥ ४ ॥

शिष्य शंका करैहै कि, ज्ञानी अपनी इच्छाके अनुसार वर्त्तै है, या दैवेच्छासे वर्त्तैहै ? तिसका गुरु उत्तर दै हैं कि–

आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्ते भूतग्रामेचतुर्विधे ।
विज्ञस्यैवहिसामर्थ्यमिच्छानिच्छाविसर्जने

अन्वयः--हि आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्ते चतुर्विधे भूतग्रामे विज्ञस्य एव इच्छानिच्छाविसर्जने सामर्थ्यं (अस्ति) ॥ ५ ॥

अर्थः—ब्रह्मासे तृणपर्य्यन्त चार प्रकारके प्राणियोंसे भरे हुए ब्रह्माण्डके विषे इच्छा और अनिच्छा यह दो पदार्थ किसीके दूर करनेसे दूर नहीं होते हैं, परन्तु ज्ञानीको ऐसी सामर्थ्य है कि, न उसको इच्छा है, न अनिच्छा है ॥ ५ ॥

अब इस वार्त्ताका वर्णन करैं हैं कि, ज्ञानी पुरुष सर्वथा निर्भय होय है—

आत्मानमद्वयं कश्चिज्जानाति जगदीश्वरम्।
यद्वेत्ति तत्स कुरुते न भयं तयस्य कुत्रचित्॥

अन्वयः--कश्चित् जगदीश्वरम् आत्मानम् अद्वयम् जानाति; सः यत् वेत्ति तत् कुरुते; तस्य कुत्राचित् भयम् न (भवति) ॥ ६ ॥

अर्थः—आत्मज्ञान करके द्वैतप्रपञ्चको दूर करनेवाले ज्ञानीको भय नहीं होता है, परन्तु अद्वितीय आत्मस्वरूपको हजारोंमें कोई एकही जानै हैं, और अद्वितीय आत्मस्वरूपका ज्ञान होनेके अनन्तर कोई कर्म्म करै अथवा न करै तौभी वह इस लोक तथा परलोकके विषे भयको नहीं प्राप्त होय है ॥ ६ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौडवंशावतंसश्रीयुतभोलानाथात्मजपण्डित-

रामस्वरूपप्रणीतया सान्वयभाषाटीकया
सहितं शिष्यप्रोक्तानुभवोल्लासषट्कं
चतुर्थं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं प्रकरणम् ५.

इसप्रकार शिष्यकी परीक्षा लेकर उसको दृढ़ उपदेश दिया, अब चार श्लोकोंकरके गुरु लयका उपदेश करै हैं–

**न ते संगोऽस्ति केनापि किं शुद्धस्त्यक्तु-
मिच्छसि ॥ संघातविलयं कुर्वन्नेवमेव
लयं व्रज ॥ १॥**

अन्वयः–(हे शिष्य !) ते केन अपि सङ्गः न अस्ति; शुद्धः (त्वम्) किम् त्यक्तुम् (उपादातुं च) इच्छसि; संघातविलयम् कुर्वन् एवम् एव लयम् व्रज ॥ १ ॥

अर्थः–हे शिष्य ! शुद्ध बुद्ध स्वरूप है, अहङ्कारादि किसीकेभी साथ तेरा सम्बन्ध नहीं है, सो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव तू त्यागनेको और ग्रहणको किसको इच्छा करै है, अर्थात् तेरे त्यागने और ग्रहण करने योग्य कोई पदार्थ नहीं है, तिस कारण संघातका निषेध करता हुआ लयको प्राप्त हो, अर्थात् देहादि सम्पूर्ण वस्तु जड़ हैं उसका त्याग कर, और मिथ्या जान ॥१॥

उदेति भवतो विश्वं वारिधेरिव बुद्बुदः ।

इति ज्ञात्वैकमात्मानमेवमेव लयं व्रज ॥२॥

अन्वयः—(हे शिष्य!) वारिधेः बुद्बुद इव भवतः विश्वम् उदेति; इति एकम् आत्मानम् ज्ञात्वा एवम् एव लयम् व्रज ॥ २ ॥

अर्थः—हे शिष्य! यह जगत् अपनी भावनासे हुआ है, अर्थात् जिसप्रकार जलसे बुलबुले भिन्न नहीं होयँ हैं, तिसी प्रकार तुझ (आत्मा) से यह जगत् भिन्न नहीं है, सजातीय विजातीय और स्वगत यह तीन भेद आत्माके विषे नहीं हैं, आत्मा एक है, सो मैंही हूँ इसप्रकार जानकर आत्मस्वरूपकें विषे लयको प्राप्त हो, (एक मनुष्यजातिके विषे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि अनेक भेद हैं. यह सजातीय भेद कहावै है, और मनुष्य, पशु, पक्षी यह जो भिन्न भिन्न जाति हैं सो विजातीय भेद है, तथा एक-देहके विषे हाथ, चरण, मुख इत्यादि जो भेद हैं सो स्वगत भेद कहाता है) ॥ २ ॥

तहाँ शंका होय है कि, जब प्रत्यक्ष हार और सर्प आ-दिका भेद प्रतीत होय है तो फिर किस प्रकार हार आदिको विलय हो सकै है? तिसका समाधान करैं हैं कि—

प्रत्यक्षमप्यवस्तुत्वाद्विश्वंनास्त्यमलेत्वयि।

रज्जुसर्प इव व्यक्तमेवमेव लयं व्रज ॥ ३ ॥

अन्वयः--प्रत्यक्षम् अपि व्यक्तम् विश्वम् रज्जुसर्पः इव अवस्तुत्वात् अमले त्वयि न अस्ति; (तस्मात्) एवम् एव लयम् व्रज ॥ ३ ॥

अर्थः– रज्जु अर्थात् डोराके विषे सर्पकी प्रत्यक्ष प्रतीति होय है, परन्तु वास्तवमें वह सर्प नहीं होय है, इसीप्रकार यह प्रत्यक्ष स्पष्ट प्रतीत होनेवाला जगत् निर्म्मल आत्माके विषे नहीं है, इसप्रकारही जानकर आत्मस्वरूपके विषे लीन हो ॥ ३ ॥

समदुःखसुखःपूर्णआशानैराश्ययोःसमः ।
समजीवितमृत्युःसन्नेवमेव लयं व्रज ॥ ४ ॥

अन्वयः–हे (शिष्य !) पूर्णः समदुःखसुखः (तथा) आशानैराश्ययोः समः सन् एवम् एव लयं व्रज ॥ ४ ॥

अर्थः–हे शिष्य! तू (आत्मा) आत्मानन्दसे परिपूर्ण इस कारणही प्रारब्धवश प्राप्त हुए सुख और दुःखके विषे समदृष्टि करनेवाला, तथा आशा और निराशाके विषे समदृष्टि करनेवाला; और जीवन तथा मरणको समदृष्टिसे देखता हुआ ब्रह्मदृष्टिरूप लयको प्राप्त हो॥४॥

इति श्रीमद० ब्रह्मवि० मुरादा० पण्डितरामस्वरूप-
प्रणीतया भा० सहितमाचार्य्योक्तं लयचतुष्टयं
नाम पञ्चमं प्रकरणं समाप्तिमितम् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठं प्रकरणम् ६.

इसप्रकार पञ्चम प्रकरणमें गुरुने लयमार्गका उपदेश करा, अब शिष्य प्रश्न करै है कि, आत्मा तो अनन्तरूप है उसका देहादिके विषे निवास करना किस प्रकार घटैगा ? तिसका गुरु समाधान करैं हैं कि–

आकाशवदनन्तोऽहं घटवत्प्राकृतं जगत्।
इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः१

अन्वयः–अहम् आकाशवत् अनन्तः, प्राकृतम् जगत् घटवत् इति ज्ञानम् (अनुभवसिद्धम्), तथा एतस्य त्यागः न, ग्रहः न, लयः (न) ॥ १ ॥

अर्थः–आत्मा आकाशकी समान अनन्तरूप है. और प्रकृतिका कार्य्य जगत् घटकी समान आत्माका अवच्छेदक और निवासस्थान है अर्थात् जिसप्रकार आकाश घटादिमें व्याप्त होय है, तिसी प्रकार आत्मा देहके विषे व्याप्त है; इसप्रकारका जो ज्ञान है सो वेदान्तसिद्ध और अनुभवसिद्ध है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, तिसकारण उस आत्माका त्याग नहीं है, और ग्रहण नहीं है, तथा लय नहीं है ॥ १ ॥

इस घट और आकाशके दृष्टान्तसे देह और आत्माके भेदकी शङ्का होय है, तहाँ कहैं हैं कि–

महोदधिरिवाहं स प्रपञ्चो वीचिसन्निभः ॥

इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः२

अन्वयः—सः अहम् महोदधिः इव, प्रपञ्चः वीचिसन्निभः इति ज्ञानम् (अनुभवसिद्धम्); तथा एतस्य त्यागः न, ग्रहः न, लयः (न)॥ २॥

अर्थः—वह पूर्वोक्त मैं (आत्मा) समुद्रकी समान हूँ, और प्रपञ्च तरङ्गोंकी समान है, इसप्रकारका ज्ञान अनुभवसिद्ध है, तिस कारण इस आत्माका त्याग, ग्रहण और लय होना सम्भव नहीं है॥ २॥

इस समुद्र और तरङ्गोंके दृष्टान्तसे आत्माके विषे विकारकी शङ्का होय है इस शिष्यके सन्देहका गुरु समाधान करैं हैं कि—

अहंसशुक्तिसंकाशो रूप्यवद्विश्वकल्पना॥
इतिज्ञानंतथैतस्य न त्यागो न ग्रहोलयः॥३॥

अन्वयः—सः अहम् शुक्तिसङ्काशः, विश्वकल्पना रूप्यवत्, इति ज्ञानम् तथा एतस्य, त्यागः न, ग्रहः न, लयः (न)॥ ३॥

अर्थः—जिस प्रकार सीपीके विषे रजत कल्पित होय है, इसी प्रकार आत्माके विषे यह जगत् कल्पित है, इस प्रकारका वास्तविक ज्ञान होनेपर आत्माका त्याग, ग्रहण और लय नहीं होसकैहै॥ ३॥

तहाँ शिष्य शङ्का करै है कि-सीपी और रजतका

जो दृष्टान्त दिखाया तिससे तो आत्माके विषे परिच्छिन्नता अर्थात् एकदेशीपनारूप दोष आवै है? तहाँ कहैं हैं कि—

अहं वा सर्वभूतेषु सर्वभूतान्यथो मयि॥
इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः४

अन्वयः--सर्वभूतेषु अहम् अथो वा सर्वभूतानि मयि इति ज्ञानम् (अनुभवसिद्धम्); तथा एतस्य त्यागः न, ग्रहः न, लयः (न)॥ ४॥

अर्थः—मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे सत्तारूपसे स्थित रहताहूँ, इसकारण सम्पूर्ण प्राणी मुझ अधिष्ठानरूपके विषेही स्थित हैं, इसप्रकारका ज्ञान वेदान्तशास्त्रके विषे प्रतिपादन करा है, ऐसा ज्ञान होनेपर आत्माका त्याग, ग्रहण और लय नहीं होय है॥ ४॥

इति श्रीमद॰ ब्रह्मवि॰ मुरादा॰ पं॰ रा॰ स्व॰
प्रणीतया भाषाटीकया सहितंशिष्यो-
क्तमुत्तरचतुष्कं नाम षष्ठंप्रकरणं
समाप्तम्॥ ६॥

अथ सप्तमं प्रकरणम् ७.

पंचम प्रकरणके विषे गुरुने इस प्रकार वर्णन करा कि, लययोगका आश्रय करे विना सांसारिक व्यवहारोंका विक्षेप अवश्य होता है, तिसके उत्तरमें

षष्ठप्रकरणके विषे शिष्यने कहा कि-आत्माके विषे इष्ट-अनिष्टभाव तिस कारण आत्माका त्याग, ग्रहण, लय आदि नहीं होय है, अब इस कथनकाही पांच श्लोकों करके विवेचन करैं हैं कि-

मय्यनन्तमहाम्भोधौ विश्वपोत इतस्ततः ।
भ्रमति स्वान्तवातेन न ममास्त्यसहिष्णुता

अन्वयः-अनन्तमहाम्भोधौ मयि स्वान्तवातेन विश्वपोतः इतस्ततः भ्रमति; मम असहिष्णुता न अस्ति ॥ १ ॥

अर्थः-मैं चैतन्यमय अनन्त समुद्र हूँ, और मेरे विषे संसाररूपी नौका मनरूपी वायुके वेगकरके चारों ओरको घूमै है, तिस संसाररूपी नौकाके भ्रमणसे मेरा मन इसप्रकार चलायमान नहीं होय है, जिसप्रकार नौकासे समुद्र चलायमान नहीं होय है ॥ १ ॥

इसप्रकार यह वर्णन करा कि-संसारके व्यवहारोंसे आत्माकी कोई हानि नहीं होय है, और अब यह वर्णन करैं हैं कि-संसारकी उत्पत्ति और लयसे भी आत्माकी कोई हानि नहीं होय है-

मय्यनन्तमहाम्भोधौजगद्वीचिःस्वभावतः ।
उदेतु वास्तमायातु न मे वृद्धिर्न च क्षतिः॥२॥

अन्वयः-अनन्तमहाम्भोधौ मयि स्वभावतः जग-

द्वीचिः उदेतु; वा अस्तम् आयातु, मे वृद्धिः न, क्षतिः चन

अर्थः--मैं चैतन्यमय अनन्तरूप समुद्र हूं, तिस मेरे (आत्माके) विषे स्वभावकरके संसाररूपी तरङ्गें उत्पन्न होय हैं, और नष्ट होजायँ हैं, तिन संसाररूपी तरङ्गों-के उत्पन्न होनेसे मेरा कोई लाभ नहीं होय है, और नष्ट होनेसे हानि नहीं होय है, क्योंकि--मैं सर्वव्यापी हूं इस-कारण मेरी उत्पत्ति नहीं होसकै है, और मैं अनन्त हूं इसकारण मेरा लय (नाश) नहीं होसकै है ॥ २ ॥

इस कहे हुए समुद्र और तरंगके दृष्टान्तसे आत्माके विषे परिणामीपनेकी शंका होय है, तिस शंकाकी निवृ-त्तिके अर्थ कहैं हैं कि--

मय्यनन्तमहाम्भोधौ विश्वंनाम विकल्पना
अतिशांतोनिराकार एतदेवाहमास्थितः॥३॥

अन्वयः--अनन्तमहाम्भोधौ मयि विश्वम् विक-ल्पना नाम (अतः) अहम् अतिशान्तः निराकारः एतत् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ ३ ॥

अर्थः--अनन्तसमुद्ररूप जो मैं तिस मेरे विषे जगत् केवल कल्पनामात्र है सत्य नहीं है, इसकारणही मैं शान्त कहिये सम्पूर्णविकाररहित, और निराकार तथा केवल आत्मज्ञानका आश्रित हूं ॥ ३ ॥

अब आत्माकी शान्तस्वरूपताकाही वर्णन करते हैं कि-

नात्मा भावेषु नो भावस्तत्रानन्ते निरञ्जने ।
इत्यसक्तोऽस्पृहःशान्तःएतदेवाहमास्थितः४

अन्वयः—भावेषु आत्मा न, अनन्ते निरञ्जने तत्र भावः नो इति अहम् असक्तः अस्पृहः शान्तः एतत् एव आश्रितः (अस्मि) ॥ ४ ॥

अर्थः--देह--इंद्रियादि पदार्थोंके विषे आत्मपना अर्थात् सत्यपना नहीं है, क्योंकि--देहेन्द्रियादि पदार्थ उत्पन्न होय हैं और नष्ट होय हैं, और देह-इन्द्रियादि-रूप उपाधि आत्माके विषे नहीं है, क्योंकि-आत्मा अनन्त और निरञ्जन है, इसकारणही इच्छारहित और शान्त तथा तत्त्वज्ञानका आश्रित हूं ॥ ४ ॥

आत्मा इच्छादिरहित है इस विषयमें और हेतु कहैं हैं कि—

अहो चिन्मात्रमेवाहमिन्द्रजालोपमं जगत् ।
अतो मम कथं कुत्र हेयोपादेयकल्पना॥५॥

अन्वयः--अहो अहम् चिन्मात्रम् एव जगत् इन्द्रजालोपमम्, अतः मम हेयोपादेयकल्पना कुत्र कथम् (स्यात्) ॥ ५ ॥

अर्थः—अहो मैं अलौकिक चैतन्यमात्र हूँ, और जगत् इन्द्रजाल कहिये बाजीगरके चरित्रोंकी समान है, इस कारण किसी पदार्थके विषे मेरे ग्रहण करनेकी औ

त्यागनेकी कल्पना किसप्रकार होसकै है? अर्थात् न तो मैं किसी पदार्थको त्यागूँ हूँ और न ग्रहण करूँहूँ ॥ ८ ॥
इति श्रीमदष्टा॰ ब्रह्मवि॰ मुरा॰ पं॰ रामस्व॰ प्रणीतया भाषाटीकया सहितमनुभवपञ्चमविवरणं नाम सप्तमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

अथाष्टमं प्रकरणम् ८.

इसप्रकार छः प्रकरणों करके अपने शिष्यकी सर्वथा परीक्षा लेकर, बन्धमोक्षकी व्यवस्था वर्णन करनेके मिषसे गुरु अपने शिष्यके अनुभवकी चार श्लोकों करके प्रशंसा करैं हैं कि-

तदा बन्धो यदा चित्तं किञ्चिद्वाञ्छति शोचति । किञ्चिन्मुञ्चति गृह्णाति किञ्चिद्धृष्यति कुप्यति ॥ १ ॥

अन्वयः-यदा चित्तम् किञ्चित् वाञ्छति शोचति किञ्चित् मुञ्चति गृह्णाति किञ्चित् हृष्यति कुप्यति तदा बन्धः भवति ॥ १ ॥

अर्थः-हे शिष्य! तैंने जो कहा कि-मेरेको(आत्माको) कुछ त्याग करना और ग्रहण करना नहीं है सो सत्य है, क्योंकि-जब चित्त किसी वस्तुकी इच्छा करै है, किसी वस्तुका शोक करै है, किसी वस्तुका त्याग करै है, किसी वस्तुका ग्रहण करता है, किसी वस्तुसे

प्रसन्न होता है, अथवा कोप करता है, तबही जीवका बन्ध होता है ॥ १ ॥

तदा मुक्तिर्यदा चित्तं नवाञ्छतिनशोचति।
न मुञ्चति न गृह्णाति नहृष्यतिनकुप्यति २

अन्वयः—यदा चित्तम् न वाञ्छति न शोचति न मुञ्चति न गृह्णाति न हृष्यति न कुप्यति ॥ २ ॥

अर्थः—जब चित्त इच्छा नहीं करता है, शोक नहीं करता है; किसी वस्तुका त्याग नहीं करता है ग्रहण नहीं करता है, तथा किसी वस्तुकी प्राप्तिसे प्रसन्न नहीं होता है और कारण होनेपरभी कोप नहीं करता है तबही जीवकी मुक्ति होती है ॥ २ ॥

इसप्रकार बन्धमोक्षका भिन्न भिन्न वर्णन करा अब दोनों इकट्ठा वर्णन करते हैं ॥

तदा बन्धो यदा चित्तं सक्तं कास्वपिदृष्टिषु ।
तदा मोक्षो यदा चित्तमसक्तं सर्वदृष्टिषु॥३॥

अन्वयः--यदा चित्तम् कासु अपि दृष्टिषु सक्तम् तदा बन्धः, यदा चित्तम् सर्वदृष्टिषु असक्तम् तदा मोक्षः ॥ ३ ॥

अर्थः—जिसका चित्त आत्माभिन्न किसीभी जड़-पदार्थके विषे आसक्त होय है, तब जीवका बन्ध होता है, और जब चित्त आत्माभिन्न सम्पूर्ण जड़ पदार्थोंके

विषे आसक्तिरहित होय है, तबही जीवका मोक्ष होय है ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण विषयोंकेविषे चित्त आसक्त न होय ऐसी साधनसम्पत्ति प्राप्त होनेपरभी अहङ्कार दूर हुए विना मुक्ति नहीं होती है. कहते हैं कि--

यदा नाहं तदा मोक्षो यदाहं बन्धनं तदा।
मत्वेतिहेलयाकिञ्चिन्मागृहाणविमुञ्च मा ४

अन्वयः--यदा अहम् न तदा मोक्षः, यदा अहम् तदा बन्धनम् इति मत्वा हेलया किञ्चित् मा गृहाण मा विमुञ्च ॥ ४ ॥

अर्थः--जबतक मैं देहहूँ इसप्रकार अभिमान रहता है, तबतकही यह संसारबन्धन रहता है और जब मैं आत्मा हूँ, देह नहीं हूँ, इसप्रकारका अभिमान दूर हो जाता है, तब मोक्ष होता है. इसप्रकार जानकर व्यवहारदृष्टिसे न किसी वस्तुको ग्रहण कर न किसी वस्तुका त्याग कर ॥ ४ ॥

इति श्रीमदष्टा० ब्रह्मवि० मुरादा० पं० रामस्वरूपप्रणीतया भाषाटीकया सहितं गुरुप्रोक्तं बन्धमोक्षव्यवस्थानामाष्टमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

अथ नवमं प्रकरणम् ९.

ऊपरके प्रकरणकेविषे गुरुने कहा कि–"न किसी वस्तुको ग्रहण कर न त्याग कर"। तहाँ शिष्य प्रश्न करै है, त्यागकी क्या रीति है? तिसके समाधानमें गुरु आठ श्लोकोंकरके वैराग्य वर्णन करैं हैं कि–

कृताकृतेचद्वन्द्वानिकदाशान्तानिकस्य वा ।
एवंज्ञात्वेह निर्वेदाद्भवत्यागपरोऽव्रती ॥ १ ॥

अन्वयः–कृताकृते द्वन्द्वानि कस्य कदा वा शान्तानि एवम् ज्ञात्वा इह निर्वेदात् त्यागपरः अव्रती भव ॥ १ ॥

अर्थः–कृत और अकृत अर्थात् यह करना चाहिये, यह नहीं करना चाहिये, इत्यादि अभिनिवेश और सुख–दुःख, शीत–उष्ण, आदि द्वन्द्वों किसीके कभी शान्त हुए हैं? अर्थात् कभी किसीके निवृत्त नहीं हुए. इसप्रकार जानकर इन कृत–अकृत और सुखदुःखादिकेविषे विरक्ति होनेसे त्यागपरायण और सम्पूर्ण पदार्थोंकेविषे आग्रहका त्यागनेवाला हो ॥ १ ॥

चित्तके धर्मोंका त्यागरूप वैराग्य तौ किसी कोही होता है, सबको नहीं, यह वर्णन करते हैं–

कस्यापि तात धन्यस्य लोकचेष्टावलोकनात् ॥ जीवितेच्छा बुभुक्षा च बुभुत्सोपशमं गताः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे तात ! लोकचेष्टावलोकनात् कस्य अपि धन्यस्य जीवितेच्छा बुभुक्षा बुभुत्सा च उपशमम गताः ॥ २ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! सहस्रों में से किसी एक धन्यपुरुष-कीही, संसारकी उत्पात्ति और नाशरूप चेष्टाके देख-नेसे जीवनकी इच्छा और भोगकी हच्छा, तथा जाननेकी इच्छा निवृत्त होती है ॥ २ ॥

तहाँ शिष्य शंका करै है कि—ज्ञानीपुरुषोंकी जो सम्पूर्ण विषयोंमें आसक्ति नष्ट हो जाती है, उसमें क्या कारण है? तहाँ कहते हैं कि—

अनित्यं सर्वमेवेदं तापत्रितयदूषितम्।
असारंनिन्दितंहेयमितिनिश्चित्यशाम्यति ३

अन्वयः--तापत्रितयदूषितम् इदम् सर्वम् एव अनित्यम् असारम् निन्दितम् हेयम् इति निश्चित्य (ज्ञानी) शाम्यति ॥ ३ ॥

अर्थः--यह सम्पूर्ण जगत् अनित्य है, चैतन्यस्वरूप आत्माकी सत्ताकरकै स्फुरित होय है, वास्तवमें कल्पनामात्र है, और आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों दुःखोंकरकै दूषित हो रहा है, अर्थात् तुच्छ है, झूँठा है, ऐसा निश्चय करकै ज्ञानी पुरुष उदासीनताको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

अब यह वर्णन करें हैं कि--सुखदुःखादिद्वन्द्व तो प्रारब्धकर्म्मोंके अनुसार अवश्यही प्राप्त होंगे, परन्तु तिन सुखदुःखादिकेविषे इच्छा और अनिच्छाका त्याग करके प्रारब्धकर्म्मानुसार प्राप्त हुए सुखदुःखादि द्वन्द्वोंको भोगता हुआ मुक्तिको प्राप्त होता है-

कोऽसौ कालो वयः किंवा यत्र द्वन्द्वानि नो नृणाम् ॥ तान्युपेक्ष्य यथाप्राप्तवर्त्ती सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

अन्वयः-यत्र नृणाम् द्वन्द्वानि नो (सन्ति) असौ कः कालः किम् वयः तानि उपेक्ष्य यथाप्राप्तवर्ती (सन्) सिद्धिम् अवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

अर्थः-ऐसा कौनसा काल है कि, जिसमें मनुष्यको सुखदुःखादि द्वन्द्वोंकी प्राप्ति न हो और ऐसी कौनसी अवस्था है कि-जिसमें मनुष्यको सुखदुःख आदि न हो? अर्थात् जिसमें मनुष्यको सुखदुःखादि नहीं होते हो ऐसा न कोई समय है, और न कोई ऐसी अवस्था है. सर्वकालमें और सब अवस्थाओंमें सुखदुःख तो होतेही हैं, ऐसा जानकर तिन सुखदुःखादिकेविषे सङ्कल्प विकल्पको त्यागनेवाला पुरुष प्रारब्धकर्मानुसार प्राप्त हुए सुखदुःखादिको आसक्तिरहित भोगकर सिद्धि कहिये मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

अब इस वार्त्ताको वर्णन करते हैं कि-तत्त्वज्ञानके सिवाय अन्यत्र किसी विषयमेंभी निष्ठा न करै-

नाना मतं महर्षीणां साधूनां योगिनां तथा।
दृष्ट्वा निर्वेदमापन्नःको न शाम्यति मानवः ५

अन्वयः—महर्षीणाम् साधूनाम् तथा योगिनाम् नाना मतम् दृष्ट्वा निर्वेदम् आपन्नः कः मानवः न शाम्यति ॥ ५ ॥

अर्थः—ऋषियोंके भिन्नभिन्नरीतिके नानाप्रकारके मत हैं, तिनमें कोई होम करनेका उपदेश करते हैं, कोई मन्त्रजप करनेका उपदेश करते हैं, कोई चान्द्रायण आदि व्रतोंकी महिमा वर्णन करते हैं. तिसीप्रकार साधु कहिये भक्तपुरुषोंकेभी अनेक भेद और सम्प्रदाय हैं. जैसे कि-शैव-शाक्त-वैष्णव आदि। तथा योगियोंके मतभी अनेकप्रकारके हैं, तिसमें कोई अष्टांगयोगकी साधना करते हैं, और कोई तत्त्वोंकी गणना करते हैं. इसप्रकार भिन्नभिन्नप्रकारके मत होनेके कारण तिन सबको त्यागकर वैराग्यको प्राप्त हुआ कौन पुरुष शान्तिको नहीं प्राप्त होता है? किन्तु शान्तिको प्राप्त होयगाही ॥ ५ ॥

अब यह वर्णन करते हैं कि-कर्म्मादिका त्याग करके केवल ज्ञाननिष्ठाकाही आश्रय करना चाहिये—

कृत्वा मूर्तिपरिज्ञानं चैतन्यस्य न किंगुरुः।
निर्वेदसमतायुक्त्यायस्तारयतिसंसृतेः॥६॥

अन्वयः–निर्वेदसमतायुक्त्या चैतन्यस्य मूर्ति-परिज्ञानम् कृत्वा यः न किं गुरुः (सः) संसृतेः तारयति६

अर्थः–निर्वेद कहिये वैराग्य अर्थात् विषयोंकेविषे आसक्ति न करना और समता कहिये शत्रुमित्रादि सबकेविषे समदृष्टि रखना अर्थात् सर्वत्र आत्मदृष्टि करना, तथा युक्ति श्रुतियोंके अनुसार शङ्काओंका समाधान करना, इन केद्वारा सच्चिदानन्दस्वरूपका साक्षात्कार करके फिर कर्ममार्गकेविषे गुरुका आश्रय न करनेवाला पुरुष अपने आत्माको तथा औरोंकोभी संसारसे तार देता है ॥ ६ ॥

चैतनस्वरूपके साक्षात्करनेका उपाय कहते हैं कि–

पश्य भूतविकारांस्त्वं भूतमात्रान् यथा-र्थतः । तत्क्षणाद्बन्धनिर्मुक्तःस्वरूपस्थो भविष्यसि ॥ ७ ॥

अन्वयः–(हेशिष्य!) भूतविकारान् यथार्थतः भूत-मात्रान् पश्य (एवम्) त्वम् तत्क्षणात् बन्धनिर्मुक्तः स्वरूपस्थः भविष्यति ॥ ७ ॥

अर्थः–हे शिष्य ! भूतविकार कहिये देह-इन्द्रिय-आदिको वास्तवमें जड़ जो पञ्चमहाभूत तिनका विकार जान आत्मस्वरूपमत जान यदि गुरु, श्रुति और अनुभव करके ऐसा निश्चय करलेगा तो तत्कालही संसारबन्धनसे मुक्त होकर शरीर आदिसे विलक्षण

जो आत्मा तिस आत्मस्वरूपकेविषे स्थितिको प्राप्त होयगा, क्योंकि-शरीर आदिकेविषे आत्माभिन्न जडत्व आदिका ज्ञान होनेपर तिन शरीर आदिका साक्षी जो आत्मा सो शीघ्रही जाना जाय है॥ ७॥

इसप्रकार आत्मज्ञान होनेपर आत्मज्ञानकेविषे निष्ठा होनेके लिये वासनाके त्याग करनेका उपदेश करते हैं कि-

वासना एव संसार इति सर्वा विमुञ्च ताः। त-
त्त्यागोवासनात्यागात्स्थितिरद्ययथातथा ८

अन्वयः-संसारः वासनाः एव इति ताः सर्वाः विमुञ्च, वासनात्यागात् तत्त्यागः अद्य स्थितिः यथा यथा॥८॥

अर्थः-विषयोंकेविषे वासना होनाही संसार है, इस कारण हे शिष्य! तिन सम्पूर्ण वासनाओंका त्यागकर; वासनाओंके त्यागसे आत्मनिष्ठा होनेपर तिस संसारका स्वयं त्याग हो जाय है, और वासनाओंके त्याग होने परभी संसारकेविषे शरीरकी स्थिति प्रारब्धकर्म्मोंके अनुसार रहती है॥ ८॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायांब्रह्मविद्यायां मुरादाबादनिवासिपण्डितरामस्वरूपप्रणीतया भाषाटीकया सहितं गुरुप्रोक्तं निर्वेदाष्टकं नाम नवमं प्रकरणं समाप्तम्॥ ९॥

अथ दशमं प्रकरणम् १०.

पूर्वमें विषयोंके विनाभी संतोषरूपसे वैराग्यका वर्णन करा, अब विषयतृष्णाके त्यागका गुरु उपदेश करैं हैं–

विहाय वैरिणं काममर्थं चानर्थसङ्कुलम्।
धर्म्ममप्येतयोर्हेतुं सर्वत्रानादरं कुरु॥ १॥

अन्वयः–वैरिणम् कामम् अनर्थसङ्कुलम् अर्थम् च (तथा) एतयोः हेतुम् धर्म्मम् अपि विहाय सर्वत्र अनादरम् कुरु॥ १॥

अर्थः–हे शिष्य! ज्ञानका शत्रु जो काम तिसका त्याग कर और जिसके पैदा करनेमें, रक्षा करनेमें तथा खर्च करनेमें दुःख होता है ऐसे सर्वथा दुःखोंसे भरे हुए अर्थ कहिये धनका त्यागकर, तथा काम और अर्थ दोनोंका हेतु जो धर्म्म तिसकाभी त्यागकर, और तदनन्तर धर्म्म-अर्थ-काम-रूप त्रिवर्गके हेतु जो सकाम कर्म्म तिनकेविषे आसक्तिका त्यागकर॥ १॥

तहाँ शिष्य शंका करै है कि-स्त्री, पुत्रादि और अनेक प्रकारके सुख देनेवाले जो कर्म्म तिनका किसप्रकार त्याग होसकै है तहाँ गुरु कहैं हैं कि–

स्वप्नेन्द्रजालवत्पश्य दिनानि त्रीणि पंच वा।
मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादिसम्पदः॥ २॥

अन्वयः-(हे शिष्य !) त्रीणि पंच वा दिनानि (स्थायिन्यः) मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादिसम्पदः स्वप्नेन्द्रजालवत् पश्य ॥ २ ॥

अर्थः-हे शिष्य ! तीन अथवा पांच दिन रहनेवाले मित्र, क्षेत्र, धन, स्थान, स्त्री और कुटुम्बी-आदि सम्पत्ति-योंको स्वप्न और इन्द्रजालकी समान अनित्य जान॥२॥

अब यह वर्णन करते हैं कि-सम्पूर्ण काम्यकर्म्मों में अनादर करना रूप वैराग्यही मोक्षरूप पुरुषार्थका कारण है-

यत्रयत्र भवेत्तृष्णा संसारं विद्धि तत्र वै ।
प्रौढवैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णः सुखी भव ३

अन्वयः-वै यत्रयत्र तृष्णा भवेत् तत्र संसारम् विद्धि (तस्मात्) प्रौढवैराग्यम् आश्रित्य वीततृष्णः (सन्) सुखी भव ॥ ३ ॥

अर्थः-जहां जहां विषयोंकेविषे तृष्णा होय तहां ही संसार जान, क्योंकि-विषयोंकी तृष्णाही कर्म्मोंके द्वारा संसारका हेतु होती है; तिसकारण दृढवैराग्यका अवलम्बन करके, अप्राप्तविषयोंमें इच्छारहित होकर आत्मज्ञानकी निष्ठा करके सुखी हो ॥ ३ ॥

उपरोक्त विषयकोही अन्यरीतिसे कहते हैं-

तृष्णामात्रात्मको बन्धस्तन्नाशोमोक्ष उच्य-

ते । भवासंसक्तिमात्रेण प्राप्तितुष्टिर्मुहुर्मुहुः ४॥

अन्वय–बन्धः तृष्णामात्रात्मकः तन्नाशः मोक्षः उच्यते; भवासंसक्तिमात्रेण मुहुर्मुहुः प्राप्तितुष्टिः (स्यात्) ॥ ४ ॥

अर्थः–हे शिष्य ! तृष्णामात्रही बड़ाभारी बन्धन है, और तिस तृष्णामात्रका त्यागही मोक्ष कहाता है, क्योंकि संसारकेविषे आसक्तिका त्याग करके वारंवार आत्मज्ञानसे उत्पन्न हुआ सन्तोषही मोक्ष कहाता है॥४॥

तहां शङ्का होय है कि-यदि तृष्णामात्रही बन्धन है तब तो आत्मप्राप्तिकी तृष्णा भी बन्धन होजायगी ? तहां कहते हैं कि–

त्वमेकश्चेतनःशुद्धो जडं विश्वमसत्तथा । अविद्यापि न किञ्चित्साका बुभुत्सातथापिते ५

अन्वयः--त्वम् एकः चेतनः शुद्धः (असि) विश्वम् जडम् तथा असत् (अस्ति) अविद्या अपि किंचित न; तथा ते सा बुभुत्सा अपि का ? ॥ ५ ॥

अर्थः--इस संसारमें आत्मा, जगत् और अविद्या यह तीनही पदार्थ हैं, तिन तीनोंमें आत्मा (तू) तो अद्वितीय, चेतन और शुद्ध है, तिन चैतन्यस्वरूप पूर्ण रूप आत्माके जाननेकी इच्छा (तृष्णा) बन्धन नहीं होय है, क्योंकि आत्मभिन्न जड़पदार्थोंकेविषे

इच्छा करनाही तृष्णा कहावै है क्योंकि-जड़ और अनित्य होनेके कारण जगत्केविषे इच्छा करना वन्ध्यापुत्रकी समान मिथ्या है, उस इच्छासे किसी प्रकारकी सिद्धि नहीं होय हैं, तिसीप्रकार मायाके जाननेकी इच्छा (तृष्णा) करनाभी निरर्थकही है; क्योंकि-माया सत्-रूप करके अथवा असत्-रूप करके कहनेमें नहीं आवै है ॥ ५ ॥

अब संसारकी जड़ता और अनित्यताको दिखाये हैं कि-

राज्यंसुताःकलत्राणिशरीराणिसुखानिच।
संसक्तस्यापिनष्टानितवजन्मनिजन्मनि ६॥

अन्वयः--संसक्तस्य अपि तव राज्यम् सुताः कलत्राणि शरीराणि सुखानि च जन्मनिजन्मनि नष्टानि ॥ ६ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! राज्य, पुत्र, स्त्री, शरीर और सुख इनकेविषे तैंने अत्यन्तही प्रीति करी तबभी जन्म-जन्ममें नष्ट होगए, इसकारण संसार अनित्य है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६ ॥

अब धर्म-अर्थ-काम रूप त्रिवर्गकी इच्छाका निषेध करै हैं-

अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्म्मणा ॥

एभ्यः संसारकान्तारे न विश्रान्तमभून्मनः ।

अन्वयः—अर्थेन कामेन सुकृतेन कर्म्मणा अपि अलम्, (यतः) संसारकान्तारे एभ्यः मनः विश्रान्तम् न अभूत् ॥ ७ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! धनकेविषे, कामकेविषे और सकाम कर्म्मोंके विषेभी कामना न करके अपने आनन्दस्वरूपकेविषे परिपूर्ण रहै, क्योंकि-संसाररूपी दुर्गममार्गकेविषे भ्रमता हुआ मन इन धर्म्म—अर्थ—कामसे विश्रामको कदापि नहीं प्राप्त होयगा तो कदापि संसारबन्धनका नाश नहीं होयगा ॥ ७ ॥

अब क्रियामात्रके त्यागका उपदेश करै हैं कि—

कृतं न कति जन्मानि कायेन मनसा गिरा ॥
दुःखमायासदं कर्म्म तदद्याप्युपरम्यताम् ८

अन्वयः—(हे शिष्य !) आयासदम् दुःखम् कर्म्म कायेन मनसा गिरा कति जन्मानि न कृतम्, तत् अद्य अपि उपरम्यताम् ॥ ८ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! महाक्लेश आर दुःखोंका देनेवाला कर्म्म काय, मन और वाणी करके कितने जन्मोंपर्य्यंत नहीं करा ? अर्थात् अनेक जन्मोंमें करा; और तिन जन्मजन्ममें करेहुए कर्म्मोंसे तैने अनर्थही पाया, तिस

कारण अब तो तिन कर्म्मोंका त्याग कर ॥ ८ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां मुरादाबादनिवासिपण्डितरामस्वरूपकृत-भाषाटीकया सहितं गुरुप्रोक्तमुपशमाष्टकं नाम दशमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १० ॥

अथैकादशं प्रकरणम् ११.

पूर्वोक्त शान्ति ज्ञानकरकेही होती है अन्यथा नहीं होती है, इसका बोध करानेके निमित्त आठ श्लोकों-करके ज्ञानका वर्णन करते हुए प्रथम ज्ञानके साध-नोंका वर्णन करते हैं—

भावाभावविकारश्च स्वभावादिति निश्चयी।
निर्विकारो गतक्लेशः सुखेनैवोपशाम्यति॥१॥

अन्वयः--भावाभावविकारः स्वभावात् (जायते) इति निश्चयी (पुरुषः) निर्विकारः गतक्लेशः च (सन्) सुखेन एव उपशाम्यति ॥ १ ॥

अर्थः—किसी वस्तुका भाव और किसी वस्तुका अभाव, यह जो विकार है सो तो स्वभाव कहिये माया और पूर्वसंस्कारके अनुसार होय है, आत्माके सकाशसे नहीं होय है ऐसा निश्चय जिस पुरुषको होजाता है वह पुरुष अनायाससेही शान्तिको प्राप्त हो जाताहै ॥१॥

तहाँ शिष्य शङ्का करै है कि, माया तो जड़ है उसके सकाशसे भावाभावरूप संसारकी उत्पत्ति किस प्रकार हो सके है ? तिसका गुरु समाधान करैं हैं कि—

ईश्वरःसर्वनिर्माता नेहान्य इति निश्चयी ॥
अन्तर्गलितसर्वाशः शान्तः क्वापि न सज्जते २

अन्वयः—इह सर्वनिर्माता ईश्वरः, अन्यः न इति निश्चयी (पुरुषः) अन्तर्गलितसर्वाशः शान्तः (सन्) क्व अपि न सज्जते ॥ २ ॥

अर्थः—सम्पूर्ण जगत् रचनेवाला एक ईश्वर है, अन्य जीव जगत्का रचनेवाला नहीं है; क्योंकि जीव ईश्वरके वशीभूत है. इसप्रकार निश्चय करनेवाला पुरुष ऐसे निश्चयके प्रभावसेही दूर होगई है सब प्रकारकी तृष्णा जिसकी, ऐसा और शान्त कहिये निश्चलचित्त होकर कहींभी आसक्त नहीं होता है ॥२॥

तहाँ शंका होती है कि, यदि ईश्वरही संसारको रचनेवाला है तो किन्ही पुरुषोंको दरिद्र करता है, किन्हीको धनी करता है, और किन्हीको सुखी करता है, तथा किन्हीको दुःखी करता है. इसकारण ईश्वरकेविषे वैषम्य और नैर्घृण्य दोष आवैगा ? तहाँ कहते हैं कि—

आपदः सम्पदः काले दैवादेवेति निश्चयी ॥
तृप्तः स्वस्थेन्द्रियो नित्यं न वांछति न शोचति ॥ ३ ॥

अन्वयः--काले आपदः सम्पदः (च) दैवात् एव (भवन्ति) इति निश्चयी तृप्तः (पुरुषः) नित्यम् स्वस्थेन्द्रियः (सन्) न वाञ्छति न शोचति ॥ ३ ॥

अर्थः--किसी समयमें आपत्तियें और किसी समयमें सम्पत्तियें यह अपने प्रारब्धसे होती हैं, इसकारण ईश्वरकेविषे वैषम्य और नैर्घृण्यदोष नहीं लगसक्ता. इसप्रकार निश्चय करनेवाला पुरुष सबप्रकारकी तृष्णाओंसे रहित और विषयोंकरके चलायमान नहीं हुई हैं इन्द्रियें जिसकी ऐसा होकर अप्राप्तवस्तुकी इच्छा नहीं करता है और नष्टहुई वस्तुका शोक नहीं करता है ॥ ३ ॥

तहां शिष्य शंका करै है कि, हे गुरो ! पूर्वोक्त निश्चययुक्त पुरुषभी कर्म्म करता हुआ देखनेमें आवै है सो कैसे होसके है ? तिसका गुरु समाधान करै हैं कि--

सुखदुःखेजन्ममृत्यू दैवादेवेतिनिश्चयी ।
साध्यादर्शीनिरायासःकुर्वन्नपिनलिप्यते॥४॥

अन्वयः--सुखदुःखे, जन्ममृत्यू दैवात् एव [भवन्ति] इति निश्चयी, साध्यादर्शी, निरायासः (पुरुषः कर्म्माणि) कुर्वन् अपि न लिप्यते ॥ ४ ॥

अर्थः--कर्म्मके फलरूप जो सुखदुःख और जन्ममृत्यु वह प्रारब्धके अनुसार होते हैं, इसप्रकार निश्च-

यवाला पुरुष ऐसी दृष्टि नहीं करै है कि, अमुक कर्म्म-मुझे करना चाहिये, और इसकारणही कर्म्म करनेमें परिश्रम नहीं करै है. और प्रारब्धकर्मानुसार कर्म्म-करके लिप्तभी नहीं होय, अर्थात् पापपुण्यरूप फल-का भोगनेवाला नहीं होय है, क्योंकि उसपुरुषको मैं कर्त्ता हूँ, ऐसा अभिमान नहीं होय है ॥ ४ ॥

तहां शंका होय है कि, यह कैसे हो सकै है कि-कर्म्म करकेभी पापपुण्यरूप फलका भोक्ता न होय ? तहां कहते हैं कि—

चिन्तयाजायतेदुःखंनान्यथेहेतिनिश्चयी ।
तयाहीनःसुखी शान्तः सर्वत्रगलितस्पृहः ५

अन्वयः—इह दुःखम् चिन्तया जायते, अन्यथा न इति निश्चयी (पुरुष) तया हीनः (सन्) सुखी शान्तः सर्वत्र गलितस्पृहः (भवति) ॥ ५ ॥

अर्थः—इससंसारकेविषे दुःखमात्र चिन्तासे उत्पन्न होता है, किसी अन्य कारणसे नहीं होता है. इसप्रकार निश्चयवाला चिन्तारहित पुरुष शान्ति तथा सुखको प्राप्त होता है, और उस पुरुषकी सम्पूर्ण विषयोंसे अभिलाषा दूर होजाती है ॥ ५ ॥

पर्वोक्त साधनोंकरके युक्त ज्ञानियोंकी दशाका निरूपण करते हैं कि—

नाहंदेहो न मे देहो बोधोऽहमिति निश्चयी ।
कैवल्यमिव संप्राप्तो न स्मरत्यकृतं कृतम् ६

अन्वयः—अहम् देहः न, मे देहः न, (किन्तु) अहम् बोधः इति निश्चयी (पुरुषः) कैवल्यम् संप्राप्तः इव कृतम् अकृतम् न स्मरति ॥ ६ ॥

अर्थः—मैं देह नहीं हूँ, तथा मेरा देह नहीं है, किन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, इसप्रकार जिसपुरुषको निश्चय हो जाता है, वह पुरुष ज्ञानकेद्वारा अभिमान-का नाश होनेके कारण मुक्तिदशाको प्राप्त हुए पुरुषकी समान कर्म्म-अकर्म्मका स्मरण नहीं करता है, अर्थात् उसकेविषे लिप्त नहीं होताहै ॥ ६ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तमहमेवेति नि-
श्चयी ॥ निर्विकल्पः शुचिः शान्तः
प्राप्ताप्राप्तविनिर्वृतः ॥ ७ ॥

अन्वयः—आब्रह्मस्तम्बपर्यंतम् अहम् एव इति निश्चयी (पुरुषः) निर्विकल्पः शुचिः (तथा) शान्तः (सन्) प्राप्ताप्राप्तविनिर्वृतः (भवति) ॥ ७ ॥

अर्थः—ब्रह्मासे लेकर तृणपर्य्यंत सम्पूर्ण जगत् मैंही हूँ, इसप्रकार निश्चयवाले पुरुषके संकल्प, विकल्प नष्ट होजाते हैं, विषयासक्तरूप मलसे रहित हो जाता है, उसपुरुषका महापवित्र जो आत्मा सो प्राप्त और

अप्राप्त वस्तुकी इच्छासे रहित होकर परमसन्तोषको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

तहाँ शङ्का होय है कि, ज्ञानीके सङ्कल्प; विकल्प स्वयंही किसप्रकार नष्ट होजाते हैं-

नानाश्चर्य्यमिदं विश्वं न किञ्चिदितिनिश्चयी ॥ निर्वासनः स्फूर्तिमात्रो न किञ्चिदिति शाम्यति ॥ ८ ॥

अन्वयः-नानाश्चर्य्यम् इदम् विश्वम् किञ्चित् न, इति निश्चयी (पुरुषः) निर्वासनः स्फूर्तिमात्रः (सन्) न किञ्चित् इति शाम्यति ॥ ८ ॥

अर्थः-अधिष्ठानरूप ब्रह्मका साक्षात्कारज्ञान होनेपर जगत् कल्पित प्रतीत होने लगता है, और नानारूपवाला जगत्भी ज्ञानका आत्मस्वरूपही प्रतीत होता है कि, यह सम्पूर्ण जगत् मेरी (आत्माकी) सत्तासेही स्फुरितहोता है ऐसा निश्चय होतेही ज्ञानीकी सम्पूर्ण वासना नष्ट होजाती है और चैतन्यस्वरूप होजाता है, और उसको कोई व्यवहार शेष नहीं रहै है, इसकारण शान्तिको प्राप्त होजाता है और उस ज्ञानीकी कार्य्यकारणरूप उपाधि नष्ट होजाती है,

क्योंकि ज्ञानीको सम्पूर्ण जगत् स्वप्नकी समान भासने लगता है ॥ ८ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां मुरादाबादनिवासिपण्डितरामस्वरूपप्रणीतया भाषाटीकया सहितं ज्ञानाष्टकं नामैकादशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ११ ॥

अथ द्वादशं प्रकरणम् १२.

पूर्वप्रकरणकेविषे ज्ञानाष्टककरके वर्णन करे हुए विषयकोही शिष्य अपने विषे दिखावै है कि–

कायकृत्यासहःपूर्वं ततो वाग्विस्तरासहः।
अथ चिन्तासहस्तस्मादेवमेवाहमास्थितः १

अन्वयः–पूर्वम् कायकृत्यसहः, ततः वाग्विस्तरासहः, अथ चिन्तासहः, तस्मात् अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ १ ॥

अर्थः–शिष्य कहै है कि–हे गुरो ! प्रथम मैंने आपकी कृपासे कायिकाक्रियाओंका त्याग करा, तदनन्तर वाणीके जपरूप कर्म्मका त्याग करा; इसकारणही मनके सङ्कल्पविकल्परूप कर्म्मका त्याग करा, इसप्रकार मैं सबप्रकारके व्यवहारोंका त्याग करके केवल चैतन्यस्वरूप आत्माका आश्रय करके स्थित हूँ ॥ १ ॥

उपरोक्त तीन प्रकारके कायिक-आदि व्यापारोंके त्यागनेमें कारण दिखाये हैं कि—

प्रीत्यभावेन शब्दादेरदृश्यत्वेन चात्मनः ॥
विक्षेपैकाग्रहृदय एवमेवाहमास्थितः ॥ २ ॥

अन्वयः—शब्दादेः प्रीत्यभावेन, आत्मनः च अदृश्यत्वेन विक्षेपैकाग्रहृदयः अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ २ ॥

अर्थः—नाशवान् फलके उत्पन्न करनेवाले शब्दादिविषयोंकेविषे प्रीति न होनेसे और आत्माके अदृश्य होनेसे मेरा हृदय तीनों प्रकारके विक्षेपोंसे रहित और एकाग्र है, अर्थात् नाशवान् स्वर्गादि फल देनेवाले जप आदिकेविषे प्रीति न होनेसे तो मेरेविषे जपरूप विक्षेप नहीं है और आत्मा अदृश्य है इसकारण आत्मा ध्यान का विषय नहीं है, इसकारण चिन्तारूप मनका विक्षेपभी मेरेविषे नहीं है, इसकारण मैं आत्मस्वरूप करके स्थित हूँ ॥ २ ॥

तहाँ शंका होय है कि, किसीप्रकारका विक्षेप न होनेपरभी समाधिके अर्थ तो व्यवहार करनाही पड़ैगा, तिसका समाधान करते हैं कि—

समाध्यासादिविक्षिप्तौ व्यवहारः समाधये ॥
एवंविलोक्यनियममेवमेवाहमास्थितः ॥ ३ ॥

अन्वयः--समाध्यासादिविक्षिप्तौ (सत्याम्) समाधेर्व्यवहारः (भवति), एवम् नियमम् विलोक्य अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ ३ ॥

अर्थः--यदि कर्त्तृत्व भोक्तृत्वका अध्यासरूप विक्षेप होय अर्थात् मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, इत्यादि मिथ्या अध्यासरूप विक्षेप यदि होय तो उसकी निवृत्तिके अर्थ समाधिके निमित्त व्यवहार करना पड़ता है; यदि ऐसा अध्यास नहीं होय तौ समाधिके निमित्त व्यवहार नहीं करना पड़ता है, इसप्रकारके नियमको देखकर शुद्ध आत्मज्ञानका आश्रय लेनेवाले मेरेविषे अध्यास न होनेके कारण समाधिशून्य मैं आत्मस्वरूपकेविषे स्थित हूँ ॥ ३ ॥

हेयोपादेयविरहादेवं हर्षविषादयोः ॥
अभावादद्यहेब्रह्मन्नेवमेवाहमास्थितः ॥ ४ ॥

अन्वयः--हे ब्रह्मन् ! हेयोपादेयविरहात् एवम् हर्षविषादयोः अभावात् अद्य अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ ४ ॥

अर्थः--शिष्य कहै है कि, हे गुरो ! मैं तो पूर्णस्वरूप हूँ, इसकारण किसका त्याग करूँ ? और किसका ग्रहण करूँ ? अर्थात् न मेरेको कुछ त्यागने योग्य है और न कुछ ग्रहण करने योग्य है, इसीप्रकार मेरेको किसी

प्रकारका हर्षशोकभी नहीं है, मैं तो इससमय केवल आत्मस्वरूपके विषे स्थित हूं ॥ ४ ॥

आश्रमानाश्रमं ध्यानं चित्तस्वीकृतवर्जनम् ।
विकल्पंममवीक्ष्यैतैरेवमेवाहमास्थितः ॥५॥

अन्वयः—आश्रमानाश्रमम् ध्यानम् चित्तस्वीकृत-वर्जनम् एतैः एव मम विकल्पम् वीक्ष्य अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ ५ ॥

अर्थः—मैं मन और बुद्धिसे पर हूँ, इसकारण मेरे विषे वर्णाश्रमके विषे विहित ध्यान, कर्म्म और संकल्प, विकल्प नहीं हैं, मैं सबका साक्षी हूं ऐसा विचारकर आत्मस्वरूपकेविषे स्थित हूं ॥ ५ ॥

कर्म्मानुष्ठानमज्ञानाद्यथैवोपरमस्तथा ।
बुद्ध्वासम्यगिदंतत्त्वमेवमेवाहमास्थितः॥६॥

अन्वयः—यथा अज्ञानात् कर्म्मानुष्ठानम् तथा एव उपरमः (भवति), इदम् तत्त्वम् सम्यक् बुद्ध्वा अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि ॥ ६ ॥

अर्थः—जिसप्रकार कर्म्मानुष्ठान (कर्म्म करना) अज्ञानसेही होय है, तिसप्रकारही कर्म्मका त्यागभी अज्ञानसेही होता है, क्योंकि आत्माकेविषे त्यागना और ग्रहण करना कुछभी नहीं बनै है, इस तत्त्वको यथार्थरीतिसे जानकर मैं आत्मस्वरूपके विषेही स्थित हूं ॥ ६ ॥

अचिन्त्यं चिन्त्यमानोऽपि चिन्तारूपं भजत्यसौ ॥ त्यक्त्वा तद्भावनं तस्मादेवमेवाहमास्थितः ॥ ७ ॥

अन्वयः—अचिन्त्यम् चिन्त्यमानः अपि असौ चिन्तारूपम् भजति, तस्मात् तद्भावनम् त्यक्त्वा अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ ७ ॥

अर्थः—अचिन्त्य जो ब्रह्म है तिसको चिन्तन करता हुआभी यह पुरुष आत्माचिन्तामयरूपको प्राप्त होता है, तिसकारण ब्रह्मके चिन्तनका त्याग करके मैं आत्मस्वरूपकेविषे स्थित हूँ ॥ ७ ॥

एवमेव कृतं येन स कृतार्थो भवेदसौ ॥ एवमेव स्वभावो यः स कृतार्थो भवेदसौ ॥ ८ ॥

अन्वयः--येन एवम् एव कृतम् सः असौ कृतार्थः भवेत्, यः एवम् एव स्वभावः सः असौ कृतार्थः भवेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस पुरुष इसप्रकार आत्मस्वरूपको साधनोंकेद्वारा सर्वक्रियारहित करा है वह कृतार्थ है, और जो विना साधनोंकेही स्वभावसे क्रियारहित

शुद्ध आत्मस्वरूपके ज्ञानवाला है, उसके कृतार्थ होनेमें तो कहनाही क्या है ॥ ८ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां मुरादाबादनिवासिपण्डितरामस्वरूपशर्म्मविरचितया भाषाटीकया सहितमेवमेवाष्टकं नाम द्वादशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशं प्रकरणम् १३.

अब जीवन्मुक्ति-अवस्थाका फल जो परम सुख तिसका वर्णन करते हैं-

अकिञ्चनभवंस्वास्थ्यं कौपीनत्वेऽपिदुर्लभम्
त्यागादानेविहायास्मादहमासेयथासुखम् १

अन्वयः-कौपीनत्वेपि अपि अकिञ्चनभवम् स्वास्थ्यम् दुर्लभम्, अस्मात् अहम् त्यागादाने विहाय यथासुखम् आसे ॥ १ ॥

अर्थः-सम्पूर्ण विषयोंकेविषे आसक्तिका त्याग करनेसे उत्पन्न होनेवाली चित्तकी स्थिरता, कौपीनमात्रमें आसक्ति करनेसेभी नहीं प्राप्त होती है, इसकारण मैं त्याग और ग्रहणके विषे आसक्तिका त्याग करकै सर्वदा सुखरूपकरके स्थित हूँ ॥ १ ॥

कुत्रापि खेदःकायस्य जिह्वा कुत्रापि खिद्यते।
मनः कुत्रापि तत्यक्त्वा पुरुषार्थे स्थितःसुखं २

अन्वयः—कुत्र अपि कायस्य खेदः (भवति) कुत्र अपि जिह्वा (खिद्यते) कुत्र अपि मनः (खिद्यते) (अतः) तत् त्यक्त्वा सुखम् पुरुषार्थे स्थितः (अस्मि) ॥ २ ॥

अर्थः—यदि व्रततीर्थादि सेवन करो तब तौ शरीरको खेद होता है, और यदि गीताभागवतादि स्तोत्रोंका पाठ करा जाय तौ जिह्वाको खेद होता है, और यदि ध्यान-समाधि करी जाय तो मनको खेद होता है, इसकारण मैं इन तीनों दुःखोंका त्याग करके सुखपूर्वक आत्मस्वरूपकेविषे स्थित हूँ ॥ २ ॥

वादी शंका करै है कि, वाणी मन और शरीर इन-तीनोंके व्यापारका त्याग होनेसे तौ तत्काल शरीरका नाश होजायगा, क्योंकि इसप्रकारके त्यागसे अन्न-जलकाभी त्याग हो जायगा, फिर शरीर किसप्रकार रहसकैगा ? तिसका समाधान करते हैं कि—

कृतं किमपि नैवस्यादिति सञ्चिन्त्य तत्त्वतः ॥ यदा यत्कर्त्तुमायाति तत्कृत्वासे यथासुखम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—कृतम् किम् अपि तत्त्वतः न एव स्यात् इति सञ्चिन्त्य यदा यत् कर्तुम् आयाति तत् कृत्वा यथासुखम् आसे ॥ ३ ॥

अर्थः—शरीर इन्द्रियादि करके कराहुआ कोई

कर्म्म आत्माका नहीं होसकै है, इसप्रकार विचारकर जो कर्म्म करना पड़ै है उसकर्म्मको अहंकाररहित करके मैं आत्मस्वरूपकेविषे सुखपूर्वक स्थित हूं ॥ ३॥

तहाँ वादी शङ्का करै है कि, या कर्म्ममार्गमें निष्ठा करै या निष्कर्ममार्गमेंही निष्ठा करै, एकसाथ दोनों मार्गोंपर चलना किसप्रकार होसकैगा ? तहाँ कहते हैं--

कर्म्मनैष्कर्म्यनिर्बन्धभावा देहस्थयोगिनः । संयोगायोगविरहादहमासे यथासुखम् ॥४॥

अन्वयः–कर्म्म नैष्कर्म्यनिर्बन्धभावाः देहस्थयोगिनः (भवन्ति) अहम् (तु) संयोगायोगविरहात् यथासुखम् आसे ॥ ४ ॥

अन्वयः–कर्म्म और निष्कर्म्म तौ देहका अभिमान करनेवाले योगीकोही होते हैं और मैं तौ देहके संयोग और वियोग दोनोंको त्यागकर सुखरूप स्थित हूं ॥ ४ ॥

अर्थानर्थौ न मे स्थित्या गत्या न शयने-न वा ॥ तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् तस्मादह-मासे यथासुखम् ॥ ५ ॥

अन्वयः–स्थित्या गत्या (च) मे अर्थानर्थौ न वा शयनेन (च) न तस्मात् तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् यथासुखम् आसे ॥ ५ ॥

अर्थः–लौकिक व्यवहारके विषेभी मेरेको अभि-

मान नहीं है, क्योंकि स्थिति, गति तथा शयन आदिसे मेरा कोई हानि, लाभ नहीं होय है, इसकारण मैं खडा रहूँ, वा चलता रहूँ, अथवा शयन करता रहूँ तो उसमें मेरी आसक्ति नहीं होती है, क्योंकि मैं तो सुखपूर्वक आत्मस्वरूपकेविषे स्थित हूँ ॥ ५ ॥

स्वपतो नास्ति मे हानिः सिद्धिर्यत्नवतो न-वा ॥ नाशोल्लासौ विहायास्मादहमासेय-थासुखम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—मे स्वपतः हानिः न अस्ति यत्नवतः वा सिद्धिः न (अस्ति); अस्मात् नाशोल्लासौ विहाय अहम् यथासुखम् आसे ॥ ६ ॥

अर्थः—सम्पूर्ण प्रयत्नोंको त्याग करके शयन करूँ तो मेरी किसी प्रकारकी हानि नहीं है, और अनेक प्रकारके उद्यम करूँ तो मेरा किसी प्रकारका लाभ नहीं है; इसकारण त्याग और संग्रहको छोड़कर मैं सुखपूर्वक आत्मस्वरूप विषे स्थित हूँ ॥ ६ ॥

सुखादिरूपानियमं भावेष्वालोक्यभूरिशः । शुभाशुभेविहायास्मादहमासेयथासुखम् ७॥

अन्वयः—भावेषु भूरिशः सुखादिरूपानियमम् आलोक्य अस्मात् अहम् शुभाशुभे विहाय यथासुखम् आसे ॥ ७ ॥

अर्थः--भाव जो जन्म तिनकेविषे अनेक स्थानोंमें सुखदुःखादि धर्म्मोंकी अनित्यताको देखकर और इस कारणही शुभ और अशुभ कर्म्मोंको त्यागकर मैं सुखपूर्वक आत्मस्वरूपके विषे स्थित हूँ ॥ ७ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां मुरादाबादनिवासिपण्डितशमस्वरूप-प्रणीतया भाषाटीकया सहितं यथासुखसप्तकं नाम त्रयोदशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशं प्रकरणम् १४.

अब शिष्य अपनी सुखरूप अवस्थाका वर्णन करै है कि--

प्रकृत्या शून्यचित्तो यः प्रमादाद्भावभावनः ।
निद्रितो बोधित इव क्षीणसंसरणो हि सः १

अन्वयः--प्रकृत्या शून्यचित्तः प्रमादात् भावभावनः यः निद्रितः इव बोधितः (भवति) सः हि क्षीण-संसरणः ॥ १ ॥

अर्थः--अपने स्वभाव करके तो चित्तके धर्म्मोंसे रहित है और बुद्धिके द्वारा प्रारब्धकर्म्मोंके वशीभूत होकर अज्ञानके कारण संकल्पविकल्पकी भावना करै है, जिसप्रकार कोई पुरुष सुखपूर्वक शयन करता

होय उसको कोई पुरुष जगाकर काम करावै तो वह काम उस पुरुषके मनकी इच्छाके अनुसार होय नहीं है, किन्तु अन्य पुरुषके वशीभूत होकर कार्य्य करै है वास्तवमें उसका चित्त कार्य्यके संकल्पविकल्प करके रहित होय, तिसीप्रकार प्रारब्धकर्म्मानुसार संकल्प विकल्प करनेवाले पुरुषका चित्त विषयोंसे शान्त अर्थात् संसाररहित होय है ॥ १ ॥

क्व धनानि क्व मित्राणि क्व मे विषयदस्य-
वः ॥ क्व शास्त्रं क्व च विज्ञानं यदा मे ग-
लिता स्पृहा ॥ २ ॥

अन्वयः—यदा मे स्पृहा गलिता (तदा) मे धनानि क्व, मित्राणि क्व, विषयदस्यवः क्व, शास्त्रम् क्व, विज्ञानम् च क्व २

अर्थः—विषयवासना करके रहित पूर्णरूप जो मैं हूँ तिस मेरी यदि इच्छा नष्ट होगई तो फिर मेरे धन कहाँ मित्रवर्ग कहाँ, विषयरूप लुटेरे कहाँ, और शास्त्र कहाँ, तथा ज्ञान कहाँ; अर्थात् इनमेंसे किसी वस्तुमें भी मेरी आसक्ति नहीं रहती है ॥ २ ॥

विज्ञाते साक्षिपुरुषे परमात्मनि चेश्वरे ॥
नैराश्ये बन्धमोक्षे च न चिन्ता मुक्तये
मम ॥ ३ ॥

अन्वयः—साक्षिपुरुषे परमात्मनि ईश्वरे च विज्ञाते

बन्धमोक्षे च नैराश्ये (सति) मम मुक्तये चिन्ता न ॥३॥

अर्थः—देह, इन्द्रिय और अन्तःकरणके साक्षी सर्व शक्तिमान् परमात्माका ज्ञान होनेपर पुरुषको बन्ध तथा मोक्षको आशा नहीं होती है और मुक्तिके लिये-भी चिन्ता नहीं होती है ॥ ३ ॥

अन्तर्विकल्पशून्यस्य बहिःस्वच्छन्द-चारिणः । भ्रान्तस्येव दशास्तास्तास्तादृ-शा एव जानते ॥ ४ ॥

अन्वयः—अन्तर्विकल्पशून्यस्य भ्रान्तस्य इव बहिः-स्वच्छन्दचारिणः (ज्ञानिनः) ताः ताः दशाः तादृशाः एव जानते ॥ ४ ॥

अर्थः—अंतःकरणके विषे संकल्प विकल्प करके रहित और बाहर भ्रान्त (पागल) पुरुषकी समान स्वच्छन्द होकर विचरनेवाले ज्ञानीकी तिन तिन दशा-ओंको तैसेही ज्ञानी पुरुष जानते हैं ॥ ४ ॥

इति श्रीमदष्टा० ब्रह्मवि० मुरादा० पं० रामस्व० वि-रचितया भाषाटीकया सहितं शान्तिचतुष्टयं नाम चतुर्दशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशं प्रकरणम् १५.

यद्यपि गुरुने शिष्यके अर्थ पहिले आत्मतत्त्वका उपदेश करा है, तथा शास्त्रमें ऐसा नियम है कि,

" कठिनसे जानने योग्य होनेके कारण शिष्योंके अर्थ आत्मतत्त्वका वारंवार उपदेश करना चाहिये" और छान्दोग्य उपनिषद्केविषे गुरुने शिष्यके अर्थ वारंवार आत्मतत्त्वका उपदेश करा है, इसकारण गुरु फिर भी शिष्यके अर्थ आत्मतत्त्वका उपदेश करतेहुए प्रथम ज्ञानके अधिकारी और अनधिकारीका वर्णन करै हैं कि-

यथातथोपदेशेन कृतार्थःसत्वबुद्धिमान् ।
आजीवमपिजिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति॥१॥

अन्वयः-सत्वबुद्धिमान् (शिष्य) यथा तथा उपदेशेन कृतार्थः (भवति), परः आजीवम् जिज्ञासुः अपि तत्र विमुह्यति ॥ १ ॥

अर्थः-जिसकी बुद्धि सात्विकी होती है वह शिष्य यथा कथञ्चित् उपदेश श्रवण करकेभी कृतार्थ हो-जाता है, इसकारणही सत्ययुगकेविषे केवल एक अक्षर ब्रह्म जो ॐकार तिसकेही उपदेशमात्रसे अनेक शिष्य कृतार्थ होगए अर्थात् ज्ञानको प्राप्त होगए और जिनकी तामसी बुद्धि होती है, उनको मरणपर्य्यन्त उपदेशकरो तब भी उनको आत्मस्वरूपका ज्ञान नहीं होता है, किन्तु महामोहमें पड़े रहते हैं, प्रह्लाद-जीका पुत्र जो विरोचन दैत्य था उसको ब्रह्माजीने

अनेकबार उपदेश करा, तोभी वह महामोहयुक्तही रहा, क्योंकि वह तामसी बुद्धिवाला था ॥ १ ॥

अब बन्ध और मोक्षका स्वरूप दिखाये हैं कि—

मोक्षो विषयवैरस्यं बन्धो वैषयिको रसः ॥
एतावदेव विज्ञानं यथेच्छसि तथा कुरु ॥२॥

अन्वयः—विषयवैरस्यम् मोक्षः, वैषयिकः रसः बन्धः विज्ञानम् एतावत् एव; यथा इच्छसि तथा कुरु ॥ २ ॥

अर्थः—विषयोंकेविषे आसक्ति न करना यही मोक्ष है, और विषयोंमें प्रीति करना यही बन्धन है, इतनाही गुरु और वेदान्तके वाक्योंसे जानने योग्य है; इसकारण हे शिष्य! जैसी तेरी रुचि हो वैसाकर ॥२॥

अब इसज्ञातका वर्णन करे हैं कि—तत्त्वज्ञानके सिवाय किसी अन्यसे विषयासक्तिका नाश नहीं होसकै है—

वाग्मिप्राज्ञमहोद्योगं जनं मूकजडालसम् ।
करोतितत्त्वबोधोऽयमतस्त्यक्तो बुभुक्षुभिः ३

अन्वयः—अयम् तत्त्वबोधः वाग्मिप्राज्ञमहोद्योगम् जनम् मूकजडालसम् करोति अतःबुभुक्षुभिःत्यक्तः॥३॥

अर्थ—यह प्रसिद्ध तत्त्वज्ञान वाचालपुरुषको मूक (गूंगा) कर देता है; पण्डितको जड़कर देता है परम उद्योगी पुरुषको भी आलसी करदेता है, क्यों-कि, मनके प्रत्यगात्माकेविषे लगनेसे ज्ञानीकी वाणी

मन और शरीरकी वृत्तियें नष्ट होजाती हैं. इसकारणही विषयभोगकी लालसा करनेवाले पुरुषोंने आत्मज्ञानका अनादरकर रक्खा है ॥ ३ ॥

अब तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ उपदेश करें हैं कि--

न त्वं देहो न ते देहो भोक्ता कर्त्ता न वा भवान्। चिद्रूपोऽसि सदा साक्षी निरपेक्षः सुखं चर ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे शिष्य ! त्वन् दहः न, (तथः) ते देहः न, भवान् कर्त्ता वा भोक्ता न, (यतः) (भवान्) चिद्रूपः सदासाक्षी असि, (अतः) निरपेक्षः (सन्) सुखं चर ॥ ४ ॥

अर्थः—हे शिष्य! तू देहरूप नहीं है तथा तेरा देह नहीं हैं, क्योंकि तू चैतन्यरूप है तिसीप्रकार तू कर्म्मोंका करनेवाला तथा कर्म्मफलका भोगनेवाला नहीं है, क्योंकि कर्म्म करना और फल भोगना, यह मन और बुद्धिके धर्म्म हैं, और तू तो मन और बुद्धिसे भिन्न साक्षीमात्र इसप्रकार है जिसप्रकार घटका देखनेवाला घटसे भिन्न होय है, इसकारण हे शिष्य ! देहके सम्बन्धी जो स्त्रीपुत्रादि तिनसे उदासीन होकर सुखपूर्वक विचर ॥ ४ ॥

रागद्वेषौ मनोधर्म्मौ न मनस्ते कदाचन।

निर्विकल्पोऽसि बोधात्मा निर्विकारः सुखं चर ॥ ५ ॥

अन्वयः--रागद्वेषौ मनोधर्म्मौ (भवतः) मनः ते (सम्बन्धि) कदाचन न (भवति), (यतः त्वम्) निर्विकल्पः बोधात्मा असि, (अतः) निर्विकारः (सन्) सुखं चर ॥ ५ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! राग और द्वेष आदि मनके धर्म्म हैं तेरे नहीं हैं, और तेरा मनके साथ कदापि सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि तू सङ्कल्पविकल्परहित ज्ञानस्वरूप है, इसकारण तू रागादिविकाररहित होकर सुखपूर्वक विचर ॥ ५ ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
विज्ञायनिरहंकारोनिर्ममस्त्वं सुखीभव ॥६॥

अन्वयः—सर्वभूतेषु च आत्मानम् सर्वभूतानि च आत्मनि विज्ञाय त्वम् निरहंकारः निर्ममः (सन्) सुखी भव ॥ ६ ॥

अर्थः—आत्मा सम्पूर्ण प्राणियोंकेविषे कारणरूपसे स्थित है और सम्पूर्ण प्राणी आत्माकेविषे अध्यस्त हैं, इसप्रकार जानकर, ममता और अहङ्काररहित सुखपूर्वक स्थित हो ॥ ६ ॥

विश्वं स्फुरति यत्रेदं तरङ्गा इव सागरे ॥

तत्त्वमेव न सन्देहश्चिन्मूर्त्ते विज्वरो भव॥७॥

अन्वयः--यत्र इदम् विश्वम् सागरे तरङ्गा इव स्फुरति, तत् त्वम् एव (अत्र) सन्देहः न, (अतः) हे चिन्मूर्त्ते! (त्वम्) विज्वरः भव॥ ७॥

अर्थः--जिसप्रकार समुद्रके विषे जो तरङ्गें हैं वह कल्पित और अनित्य हैं, तिसीप्रकार जिस आत्माकेविषे यह विश्वकल्पित है, वह तूही है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इसकारण हे चेतनस्वरूप शिष्य! तू सम्पूर्ण सन्ताप रहित हो॥ ७॥

श्रद्धस्व तात श्रद्धस्व नात्र मोहं कुरुष्व भोः।
ज्ञानस्वरूपोभगवानात्मा त्वं प्रकृतेःपरः॥८॥

अन्वयः--भोः तात! श्रद्धस्व श्रद्धस्व, अत्र मोहम् न कुरुष्वः (यतः) त्वम् ज्ञानस्वरूपः भगवान् प्रकृतेः परः आत्मा (असि)॥ ८॥

अर्थः--हे तात! गुरु और वेदान्तके वचनोंपर विश्वासकर, विश्वासकर, आत्माकी चेतनस्वरूपताके विषयमें मोह कहिये संशयविपर्य्ययरूप अज्ञान मतकर, क्योंकि तू ज्ञानस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, प्रकृतिसे पर आत्मस्वरूप है॥ ८॥

गुणैः संवेष्टितो देहस्तिष्ठत्यायाति याति च।

आत्मा न गन्ता नागन्ता किमेनमनुशो-
चसि ॥ ९ ॥

अन्वयः--गुणैः संवेष्टितः देहः तिष्ठति आयाति याति च आत्मा न गन्ता न, आगन्ता (अतः) एनम् किम् अनुशोचसि ॥ ९ ॥

अर्थः–गुण कहिये इन्द्रिय-आदि करके वेष्टित देहही संसारकेविषे रहै है, आवैं है, और जाय है; और आत्मा तो न जाय न आवै है. इसकारण मैं जाऊँगा, मेरा मरण होयगा, इत्यादि देहके धर्म्मों करके आत्माकेविषे शोक मतकर; क्योंकि आत्मा तो सर्वव्यापी और नित्यस्वरूप है ॥ ९ ॥

देहस्तिष्ठतु कल्पान्तं गच्छत्वद्यैव वा पु-
नः॥ क्व वृद्धिः क्व च वा हानिस्तव चिन्मा-
त्ररूपिणः ॥ १० ॥

अन्वयः–देहः कल्पान्तम् तिष्ठतु वा पुनः अद्य एव गच्छतु; चिन्मात्ररूपिणः तव क्व हानिः वा क्व च वृद्धिः १०

अर्थः–हे शिष्य ! यह देह कल्पपर्य्यन्त स्थित रहै, अथवा अबही नष्ट होजाय तौ उससे तेरी न हानि होय है और न वृद्धि होय है, क्योंकि तू तो केवल चैतन्य-स्वरूप है ॥ १० ॥

त्वय्यनन्तमहाम्भोधौविश्ववीचिःस्वभावतः।
उदेतुवास्तमायातुनतेवृद्धिर्नवाक्षतिः॥ ११॥

अन्वयः—अनन्तमहाम्भोधौ त्वयि स्वभावतः विश्ववीचिः उदेतु वा अस्तम् आयातु, ते वृद्धिः न वा क्षतिः न॥ ११॥

अर्थः—हे शिष्य! तू चैतन्य अनन्तस्वरूप है, और जिसप्रकार समुद्रकेविषे तरङ्गें उत्पन्न होय हैं और लीन हो जायँ हैं, तिसीप्रकार तेरे (आत्माके) विषे स्वभावसे संसारकी उत्पत्ति और लय होजाय है, तिससे तेरी किसीप्रकारकी हानि अथवा वृद्धि नहीं है॥ ११॥

तातचिन्मात्ररूपोऽसि नते भिन्नमिदंजगत्।
अतःकस्यकथंकुत्रहेयोपादेयकल्पना॥१२॥

अन्वयः—हे तात! (त्वम्) चिन्मात्ररूपः असि, इदम् जगत् ते भिन्नम् न, अतः हेयोपादेयकल्पना कस्य कुत्र कथम् (स्यात्)॥ १२॥

अर्थः—हे शिष्य! तू चैतन्यमात्रस्वरूप है, यह जगत् तुझसे भिन्न नहीं है, इसकारण त्यागना और ग्रहण करना कहाँ बनसकै है और किसका होसकै है और किसमें होसकै है॥ १२॥

एकस्मिन्नव्ययेशान्तेचिदाकाशेऽमलेत्वयि।
कुतोजन्मकुतोकर्म्मकुतोऽहङ्कार एवच॥१३

अन्वयः—एकस्मिन् अव्यये शान्ते चिदाकाशे अमले त्वयि जन्म कुतः कर्म्म कुतः, अहङ्कारः च एव कुतः ॥ १३ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! तू अविनाशी, एक, शान्त, चैतन्याकाशस्वरूप और निर्मलाकाशस्वरूप है, इसकारण तेरा जन्म नहीं होय है तथा तेरेविषे अहङ्कार होनाभी नहीं घट सकैहै, क्योंकि कोई द्वितीय वस्तु होय तो अहङ्कार होय; तथा तेरेविषे जन्म होनाभी नहीं बनसकै है, क्योंकि अहङ्कारके विना कर्म्म नहीं होय है, इसकारण तू शुद्धस्वरूप है ॥ १३ ॥

यत्वं पश्यसि तत्रैकस्त्वमेव प्रतिभाससे ॥ किं पृथक् भासते स्वर्णात्कटकांगदनूपुरम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—यत् त्वम् पश्यसि तत्र त्वम् एव एकः प्रतिभाससे; कटकाङ्गदनूपुरम् किम् स्वर्णात् पृथक् भासते ॥ १४ ॥

अर्थः—जिसप्रकार कटक, बाजूबन्द और नूपुर आदि आभूषणोंकेविषे एक सुवर्णही भासे है, तिसीप्रकार जिसजिस कार्य्यको तू देखै है तिसतिस कार्य्यकेविषे एक कारणस्वरूप तूही (आत्माही) भासै है ॥ १४ ॥

अयं सोऽहमयं नाहं विभागमिति

सन्त्यज सर्वमात्मेति निश्चित्य निः
संकल्पः सुखी भव ॥ १५ ॥

अन्वयः—सः अयम् अहम्, अयम् अहम् न इति विभागम् संत्यज, (तथा) सर्वम् आत्मा इति निश्चित्य निःसंकल्पः (सन्) सुखी भव ॥ १५ ॥

अर्थः—यह जो सम्पूर्ण देहआदि पदार्थ हैं तिनका मैं साक्षी हूँ, और मैं देह, इन्द्रिय-आदिरूप नहीं हूँ, अथवा यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ, इसभेदका त्यागकर, और सम्पूर्ण जगत् आत्माही है ऐसा निश्चय करके, सम्पूर्ण संकल्प विकल्पोंको त्यागकर सुखी हो ॥ १५ ॥

तवैवाज्ञानतो विश्वं त्वमेकः परमार्थ-
तः । त्वत्तोऽन्यो नास्ति संसारी ना-
संसारी च कश्चन ॥ १६ ॥

अन्वयः—विश्वम् तव अज्ञानतः एव (भवति), परमार्थतः त्वम् एकः (एव अतः) संसारी त्वत्तः अन्यः न अस्ति; असंसारी च कश्चन (त्वत्तः अन्यः) न (अस्ति) ॥ १६ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! तेरे अज्ञानसेही विश्व भासै है, वास्तवमें संसार कोई नहीं है; परमार्थस्वरूप अद्वितीय तू एकही है, इसकारणही तुझसे अन्य कोई संसारी अथवा असंसारी नहीं है ॥ १६ ॥

भ्रान्तिमात्रमिदं विश्वं न किञ्चिदिति निश्चयी । निर्वासनः स्फूर्तिमात्रो न किञ्चिदिव शाम्यति ॥ १७ ॥

अन्वयः--इदम् विश्वम् भ्रान्तिमात्रम् किञ्चित् न, इति निश्चयी (पुरुषः) निर्वासनः स्फूर्तिमात्रः (सन्) न किञ्चित् इव शाम्यति ॥ १७ ॥

अर्थः—यह विश्व भ्रान्तिमात्रसे कल्पित है, वास्तवमें किञ्चिन्मात्र भी सत्य नहीं है, इसप्रकार जिसको निश्चय हुआ है वह पुरुष वासनारहित और प्रकाशस्वरूप होकर केवल चैतन्यस्वरूपकेविषे शान्तिको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

एक एव भवाम्भोधावासीदस्ति भविष्यति । न ते बन्धोऽस्ति मोक्षो वा कृतकृत्यः सुखं चर ॥ १८ ॥

अन्वयः—भवाम्भोधौ एकः एव आसीत्, अस्ति भविष्यति, (अतः) ते बन्ध वा मोक्षः न अस्ति; (अतः त्वम्) कृतकृत्यः (सन्) सुखं चर ॥ १८ ॥

अर्थः—भूत भविष्यत् और वर्त्तमानरूप त्रिकालमें भी इससंसारसमुद्रके विषे तूही था, और तुही है तथा तुही होयगा, अर्थात् इससंसारकेविषे सदा एक

तूही रहा है, इसकारण तेरा बन्ध और मोक्ष नहीं है, सो कृतार्थ हुआ तू सुखपूर्वक विचर ॥ १८ ॥

मा सङ्कल्पविकल्पाभ्यां चित्तं क्षोभय चिन्मय ॥ उपशाम्य सुखं तिष्ठ स्वात्मन्यानन्दविग्रहे ॥ १९ ॥

अन्वयः–(हे शिष्य !) चिन्मय ! सङ्कल्पविकल्पाभ्याम् चित्तम् मा क्षोभय उपशाम्य आनन्दविग्रहे स्वात्मनि सुखम् तिष्ठ ॥ १९ ॥

अर्थः–हे शिष्य ! तू चैतनस्यरूप है, सङ्कल्प और विकल्पों करके चित्तको चलायमान मतकर, किन्तु चित्तको संकल्पविकल्पोंसे शान्त करके आनन्दरूप आत्मस्वरूपकेविषे सुखपूर्वक स्थित हो ॥ १९ ॥

त्यजैव ध्यानं सर्वत्र मा किञ्चिद्धृदि धारय ॥ आत्मा त्वं मुक्त एवासि किं विमृश्य करिष्यासि ॥ २० ॥

अन्वयः–सर्वत्र एव ध्यानम् त्यज, हृदि किञ्चित् अपि मा धारय, आत्मा त्वम् मुक्तः एव असि, (अतः) विमृश्य किम् करिष्यसि ॥ २० ॥

अर्थः--हे शिष्य ! सर्वत्रही ध्यानका त्यागकर, कुछ भी संकल्प विकल्प हृदयके विषे धारण मतकर, क्योंकि आत्मरूप तू सदा मुक्तही है, फिर विचार

(ध्यान) करके और क्या फल प्राप्त करैगा ॥ २० ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां मुरादाबादनिवासिपंडितरामस्वरूपविरचित-भाषया सहितं तत्त्वोपदेशविंशतिकं नाम पञ्चदशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १५ ॥

अथ षोडशं प्रकरणम् १६.

तत्त्वज्ञानके उपदेश करके जगत्को आत्मस्वरूपसे देखना और तृष्णाका नाश करनाही मुक्ति कहाती है, यह विषय वर्णन करते हैं—

आचक्ष्व शृणु वा तात नाना शास्त्राण्यनेकशः तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते १॥

अन्वयः—हे तात ! नानाशास्त्राणि अनेकशः आचक्ष्व वा शृणु तथापि सर्वविस्मरणात् ऋते तव स्वास्थ्यम् न स्यात् ॥ १ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! तू नानाप्रकारके शास्त्राके अनेकवार अन्यपुरुषोंके अर्थ उपदेशकर अथवा अनेकवार श्रवणकर, परन्तु सबको भुलेविना अर्थात् सम्पूर्ण वस्तुके भेदका त्याग करे विना स्वस्थता अर्थात् मुक्ति कदापि नहीं होयगी, किन्तु सम्पूर्ण वस्तुओंमें भेददृष्टिका त्याग करनेसेही मोक्ष होयगी तहाँ शिष्य शंका करै है कि, सुषुप्ति अवस्थाके

विषे किसी वस्तुका भी भान नहीं होय है, इसकारण सुषुप्ति अवस्थामें सम्पूर्णप्राणियोंका मोक्ष हो जाना चाहिये ! इस शङ्काका गुरु समाधान करैं हैं कि,सुषुप्तिमें सम्पूर्णवस्तुओंका भान तो नहीं रहता है, परन्तु एक अज्ञानका भान तो रहताही है, इसकारण मोक्ष नहीं होय है,और जीवन्मुक्तका तो अज्ञानसहित जगत्-मात्रका भान नहीं रहता है, इसकारण उसकी मुक्ति हुईही समझना चाहिये ॥ १ ॥

भोगं कर्म्म समाधिं वा कुरु विज्ञ तथापि ते ।
चित्तं निरस्तसर्वाशमत्यर्थंरोचयिष्यति॥२॥

अन्वयः—हे विज्ञ ! (त्वम्) भोगम् कर्म्म वा समाधिम् कुरु तथापि ते चित्तम् अत्यर्थम् निरस्तसर्वाशम् रोचयिष्यति ॥ २ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! तू ज्ञानसम्पन्न होकर विषयभोगकर, अथवा सकाम कर्म्मकर, अथवा समाधिको कर, तथापि सम्पूर्ण वस्तुओंके विस्मरणसे सब प्रकारकी आशारहित तेरा चित्त आत्मस्वरूपके विषेही अधिक रुचिको उत्पन्न करैगा ॥ २ ॥

आयासात्सकलो दुःखी नैनं जाना-
ति कश्चन ॥ अनेनैवोपदेशेन धन्यः
प्राप्नोति निर्वृतिम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—सकलः आयासात् दुःखी (भवति), (परन्तु) एनम् कश्चन न जानाति; अनेन उपदेशेन एव धन्यः निर्वृतिम् प्राप्नोति ॥ ३ ॥

अर्थः—प्राणीमात्र विषयके परिश्रमसे दुःखी होते हैं, परन्तु कोई इस वार्त्ताको जानता नहीं है; क्योंकि विषयानन्दकेविषे निमग्न होय है, जो भाग्यवान् पुरुष होता है वह सद्गुरुसे इस उपदेशको ग्रहण करके परम सुखको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयो-
रपि ॥ तस्यालस्यधुरीणस्य सुखं
नान्यस्य कस्यचित् ॥ ४ ॥

अन्वयः—यः तु निमेषोन्मेषयोः अपि व्यापारे खिद्यते आलस्यधुरीणस्य तस्य (एव) सुखम् (भवति), अन्यस्य कस्यचित् न ॥ ४ ॥

अर्थः—जो पुरुष नेत्रोंके निमेष—उन्मेषक व्यापारमें अर्थात् नेत्रोंके खोलने—मूँदनेमें भी परिश्रम मानकर दुःखित होता है, उस परम आलसीकोही अर्थात् उस निष्क्रिय पुरुषकोही परम सुख मिलता है, अन्य किसीकोही नहीं ॥ ४ ॥

इदं कृतमिदं नेति द्वन्द्वैर्मुक्तं यदा मनः ॥
धर्म्मार्थकाममोक्षेषु निरपेक्ष तदा भवेत् ॥ ५ ॥

अन्वयः—इदम्, कृतम्, इदम् न (कृतम्), इति द्वन्द्वैः यदा मनः मुक्तम् (भवति) तदा धर्म्मार्थकाममोक्षेषु निरपेक्षम् भवेत् ॥ ५ ॥

अर्थः—जिसके मनका द्वैतभाव नष्ट हो जाय, अर्थात् यह कार्य्य करना चाहिये, यह नहीं करना चाहिये, यह विधिनिषेधरूपी द्वन्द्व जिसके मनसे दूर होजायँ, वह पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारोंमें भी इच्छा न करै, क्योंकि वह पुरुष जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त होजाता है ॥ ५ ॥

विरक्तो विषयद्वेष्टा रागी विषयलोलुपः ॥
ग्रहमोक्षविहीनस्तु न विरक्तो न रागवान् ६

अन्वयः—विरक्तः विषयद्वेष्टा (भवति), रागी विषयलोलुपः (भवति) ग्रहमोक्षविहीनः तु न विरक्तः (भवति) न रागवान् (भवति) ॥ ६ ॥

अर्थः—जो पुरुष विषयसे द्वेष करता है वह विरक्त कहाता है और जो विषयोंमें अतिलालसा करता है वह रागी (कामुक) कहाता है,परन्तु जो ग्रहण और मोक्ष करके रहित ज्ञानी होता है,वह न विषयोंसे द्वेष करता है; और न विषयोंसे प्रीति करता है, अर्थात् प्रारब्धयोगानुसार जो प्राप्त होय उसका त्याग नहीं करता है, और अप्राप्तवस्तुके मिलनेकी इच्छा नहीं करता है इस

कारण जीवन्मुक्त पुरुष विरक्त और रागी दोनोंसे विलक्षण होता है ॥ ६ ॥

तहाँ शंका होय है कि—ज्ञानियोंकेविषे तो त्याग और ग्रहणका व्यवहार देखनेमें आवै है। तहां कहैं हैं कि—

हेयोपादेयता तावत्संसारविटपांकुरः ॥
स्पृहा जीवति यावद्वै निर्विचारदशास्पदम्७

अन्वयः—निर्विचारदशास्पदम् स्पृहा यावत् जीवति तावत् वै हेयोपादेयता संसारविटपाङ्कुरः (भवति) ॥ ७ ॥

अर्थः—जिस समयपर्य्यन्त अज्ञानदशाके निवास करनेका स्थानरूप इच्छा जबतक रहै है, तिस समय-पर्य्यन्तही तबतकही पुरुषका ग्रहण करना और त्यागना रूप संसाररूपी वृक्षका अंकुर रहै है, और ज्ञानियोंका तो इच्छा न होने कारण त्यागना और ग्रहण करने देखने मात्र होय हैं ॥ ७ ॥

प्रवृत्तौ जायते रागो निवृत्तौ द्वेष एव हि ॥
निर्द्वन्द्वो बालवद्धीमानेवमेव व्यवस्थितः८

अन्वयः—हि प्रवृत्तौ रागः, निवृत्तौ एव द्वेषः जायते (अतः) धीमान् बालवत् निर्द्वन्द्वः (सन्) एवम् एव व्यवस्थितः भवेत् ॥ ८ ॥

अर्थः—यदि विषयोंमें प्रीति करै तो प्रीति दिनपर दिन बढ़ती जाती है, और विषयोंसे द्वेषपूर्वक निवृत्त

होय तो दिनपर दिन विषयोंमें द्वेष होता जाता है, इस कारण ज्ञानी पुरुष, शुभ और अशुभके विचाररहित जो बालक तिसकी समान रागद्वेषरहित होकर, संगपूर्वक जो विषयोंमें प्रवृत्ति करना और द्वेषपूर्वक जो विषयोंसे निवृत्त होना इन दोनोंसे रहित होकर रहै और प्रारब्धकर्म्मानुसार जो प्राप्त होय उसमें प्रवृत्त होय और अप्राप्तकी इच्छा न करै ॥ ८ ॥

हातुमिच्छति संसारं रागी दुःखजिहासया।
वीतरागोहि निर्मुक्तस्तस्मिन्नपि न खिद्यति९

अन्वयः—रागी दुःखजिहासया संसारम् हातुम् इच्छति; हि वीतरागः निर्मुक्तः (सन्) तस्मिन् अपि न खिद्यति ॥ ९ ॥

अर्थः—जो विषयासक्त पुरुष है वह अत्यन्त दुःख भोगनेके अनन्तर, दुःखोंके दूर होनेकी इच्छा करके, संसारको त्याग करनेकी इच्छा करै है; और जो वैराग्यवान् पुरुष है वह दुःखोंसे रहित हुआ संसारमें रहकर भी खेदको नहीं प्राप्त होय है ॥ ९ ॥

यस्याभिमानो मोक्षेऽपि देहेपि ममता तथा।
न च ज्ञानी न वा योगी केवलं दुःखभागसौ ॥ १० ॥

अन्वयः—यस्य मोक्षे अपि अभिमानः तथा देहे

अपि ममता असौ न च ज्ञानी न वा योगी (किन्तु) केवलम् दुःखभाक् ॥ १० ॥

अर्थः—जिस पुरुषको ऐसा अभिमान है कि—मैं मुक्त हूँ, त्यागी हूँ, मेरा शरीर उपवास-आदि अनेक प्रकारके कष्ट सहनेमें समर्थ है; और जिसका देहकेविषे ममत्व है, वह पुरुष ज्ञानी है, न योगी है, किन्तु केवल दुःखी है; क्योंकि उसका अभिमान और ममता दूर नहीं हुए हैं ॥ १० ॥

हरो यद्युपदेष्टा ते हरिः कमलजोऽपि वा । तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते ११

अन्वयः—यदि हरः वा हरिः (अथवा) कमलजः अपि ते उपदेष्टा (स्यात्) तथापि सर्वविस्मरणात् ऋते तव स्वास्थ्यम् न स्यात् ॥ ११ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! साक्षात् सदाशिव तथा विष्णु भगवान् और ब्रह्माजी यह तीनों महासमर्थ भी तेरेको उपदेश करें, तौभी सम्पूर्ण प्राकृत अनित्य वस्तुओंकी विस्मृति विना तेरा चित्त शान्तिको प्राप्त नहीं होयगा, और जीवन्मुक्तिदशाका सुख प्राप्त नहीं होयगा ॥ ११ ॥

इति मदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां मुरादाबादनिवासिपण्डितरामस्वरूपकृतभाषया सहितं विशेषोपदेशं नाम षोडशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशं प्रकरणम् १७.

अब अन्यपुरुषोंकी भी ज्ञानमें प्रवृत्ति होनेके अर्थ तत्त्वज्ञानके फलको निरूपण करनेकी इच्छा करते हुए गुरु प्रथम तत्त्वज्ञानीकी दशाका निरूपण करै हैं–

तेन ज्ञानफलं प्राप्तं योगाभ्यासफलं तथा। तृप्तः स्वच्छेन्द्रियो नित्यमेकाकी रमते तु यः ॥ १ ॥

अन्वयः–यः तु तृप्तः स्वच्छेन्द्रियः (सन्) नित्यम् एकाकी रमते; तेन ज्ञानफलं तथा योगाभ्यासफलम् प्राप्तम् ॥ १ ॥

अर्थः–जो पुरुष इन्द्रियोंको विषयों से हटाकर और अपने स्वरूपमेंही तृप्त होकर विषयसंयोगके विना इकलाही सदा आत्माके विषे रमण करता है, उस पुरुषनेही ज्ञानका तथा योगका फल पाया है ॥ १ ॥

न कदाचिज्जगत्यस्मिंस्तत्त्वज्ञो हन्त खिद्यति। यत एकेन तेनेदं पूर्णं ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥ २ ॥

अन्वयः–हन्त ! तत्त्वज्ञः कदाचित् अस्मिन् जगति न खिद्यति; यः तेन एकेन इदं ब्रह्माण्डमण्डलम् पूर्णम् ॥ २ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! इस संसारके विषे आत्मतत्त्व-ज्ञानी कदापि खेदको नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि तिस इकले करकेही यह ब्रह्माण्डमण्डल पूर्ण है, सो दूसरे-के न होनेसे खेद किसप्रकार होसके है, सोई श्रुतिमें भी कहा है "द्वितीयाद्वै भयं भवति" ॥ २ ॥

न जातु विषयाः केऽपि स्वारामं हर्ष-
यन्त्यमी । सल्लकीपल्लवप्रीतमिवेभं
निम्बपल्लवाः ३ ॥

अन्वयः—सल्लकीपल्लवप्रीतम् इभं निम्बपल्लवाः इव अमीके अपि विषयाः स्वारामं जातु न हर्षयन्ति ॥ ३ ॥

अर्थः—निरन्तर आत्माके विषे रमै वह आत्माराम कहाता है, तिस आत्माराम पुरुषको जगत्के कोई विषय क्या प्रसन्न करसक्ते हैं, जिसप्रकार एक महाम-दोन्मत्त हस्ती वनमें हजार हस्तियोंके झुण्डमें विहार करता है और परममधुरस्वादवाली सल्लकीनाम-क लताके कोमल पत्तोंको प्रेमपूर्वक भक्षण करता है, और कडुए जो नीमके पत्ते तिनसे प्रसन्न नहीं होता है, तिसी प्रकार ज्ञानी भी परममधुर आत्माका स्वाद ले-ता है, और विषयोंके जो सुख हैं उनको परमकडु-आ जानकर त्याग देता है अर्थात् उनकी ओर दृष्टि भी नहीं देता है ॥ ३ ॥

यस्तु भोगेषु भुक्तेषु न भवत्यधिवा-
सिता। अभुक्तेषु निराकांक्षी तादृ-
शो भवदुर्लभः॥ ४॥

अन्वयः—यः तु भुक्तेषु भोगेषु अधिवासिता न भवति; (तथा) अभुक्तेषु निराकाङ्क्षी (भवति) तादृशः (पुरुषः) भवदुर्लभः॥ ४॥

अर्थः—जिसकी भोगेहुए विषयोंमें आसक्ति नहीं होती है, और नहीं भोगेहुए विषयोंमें अभिलाषा नहीं होती है, ऐसा पुरुष संसारमें दुर्लभ है, अर्थात् करोड़ोंमें एक आदमी होता है॥ ४॥

बुभुक्षुरिह संसारे मुमुक्षुरपि दृश्यते।
भोगमोक्षनिराकांक्षी विरलो हि म-
हाशयः॥ ५॥

अन्वयः— इह संसारे बुभुक्षुः मुमुक्षुः अपि दृश्यते हि भोगमोक्षनिराकांक्षी महाशयः विरलः॥ ५॥

अर्थः—इस संसारमें विषयभोगकी अभिलाषा करनेवाले भी बहुत देखनेमें आते हैं, और मोक्षकी इच्छा करनेवाले भी बहुत देखनेमें आते हैं, परन्तु विषयभोग और मोक्ष दोनोंकी इच्छा न करनेवाला तथा पूर्णब्रह्मके विषे अंतःकरण लगानेवाला विरलाही

होता है, सोई श्रीकृष्णभगवान्ने भगवद्गीताके विषे कहा है कि—"यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः" ॥ ५ ॥

धर्म्मार्थकाममोक्षेषु जीविते मरणे तथा ।
कस्याप्युदारचित्तस्यहेयोपादेयतान हि६॥

अन्वयः—धर्म्मार्थकाममोक्षेषु जीविते तथा मरणे कस्य अपि उदारचित्तस्य हि हेयोपादेयता न ॥ ६ ॥

अर्थः—धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार परम फल हैं, इनके विषे सम्पूर्ण प्राणियोंका अंतःकरण बँधा है, तथा सम्पूर्णप्राणियोंको जन्ममरणका भय रहता है, परन्तु ज्ञानी पुरुषका मन धर्म्मादिके विषे नहीं बन्धता है, और जो ज्ञानी तिन धर्म्मादिको सुखरूप जानकर ग्रहण नहीं करता है, और दुःखरूप जानकर त्यागता नहीं है, तथा जीवनमरणसे अपनी कुछ वृद्धि और हानि नहीं समझै है ऐसा ज्ञानी कोई विरलाही होता है ॥ ६ ॥

वाञ्छा न विश्वविलये न द्वेषस्तस्य
च स्थितौ । यथा जीविकया तस्मा-
द्धन्य आस्ते यथासुखम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—(यस्य) विश्वविलये वाञ्छा न, तस्य स्थितौ च द्वेषः न (अस्ति) तस्मात् धन्यः (सः) यथाजीविकया यथासुखम् आस्ते ॥ ७ ॥

अर्थः—जो ज्ञानी है, उसको इस विश्वके नाशकी इच्छा नहीं होती है तथा तिस विश्वकी स्थितिसे द्वेष नहीं होता है, क्योंकि वह ज्ञानी तो जानता है कि, सदा सर्वत्र एक ब्रह्मही प्रकाश कररहा है, और प्रारब्ध-कर्म्मानुसार देहको धारण करता है,तथा सदा सुखरूप रहता है ऐसा ज्ञानी पुरुष धन्य है ॥ ७ ॥

कृतार्थोऽनेन ज्ञानेनेत्येवं गलितधीः
कृती । पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जि-
घ्रन्नश्नन्नास्ते यथासुखम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—अनेन ज्ञानेन (अहम्) कृतार्थः इति एवम् गलितधीः कृती पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् यथासुखम् आस्ते ॥ ८ ॥

अर्थः—इस 'तत्वमसि' आदिमहावाक्यके ज्ञान करके मैं कृतार्थ होगया हूँ ऐसा निश्चय होनेसे देहादिके विषे जिसकी आत्मबुद्धि नष्ट होगई है, ऐसा ज्ञानी देखताहुआ, श्रवण करताहुआ, स्पर्श करताहुआ, सूँ-घताहुआ, तथा भक्षण करताहुआ भी सुखपूर्वकही स्थित होय है, अर्थात् मैं ज्ञानकरके कृतार्थ होगया

ऐसी बुद्धिके कारण, बाह्य इंद्रियोंका व्यापार होनेपर भी मूर्खकी समान ज्ञानीको खेद नहीं होय है ॥ ८ ॥

शून्यादृष्टिर्वृथा चेष्टा विकलानीन्द्रि-
याणि च । न स्पृहा न विरक्तिर्वा क्षी-
णसंसारसागरे ॥ ९ ॥

अन्वयः—क्षीणसंसारसागरे (पुरुषे) दृष्टिः शून्या, चेष्टा वृथा, इन्द्रियाणि च विकलानि, स्पृहा न वा विरक्तिः न ॥ ९ ॥

अर्थः—जिस ज्ञानीका संसारसागर क्षीण होजाता है, उसको विषयभोगकी इच्छा नहीं होती है और विषयोंसे विरक्ति भी नहीं होती है, क्योंकि ज्ञानीकी दृष्टि कहिये मनका व्यापार शून्य कहिये सङ्कल्पविकल्परहित होय है, और चेष्टा कहिये शरीरका व्यापार वृथा कहिये फलकी इच्छासे रहित होता है, तथा नेत्र-आदि इन्द्रियें विकल कहिये समीपमें आएहुए भी विषयोंको यथार्थरूपसे न जाननेवाली होती हैं सोई भगवद्गीताके विषे कहा भी है कि—"यस्मिन् जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः" ॥ ९ ॥

न जागर्ति न निद्राति नोन्मीलति न
मीलति । अहो परदशा कापि वर्त्तते
मुक्तचेतसः ॥ १० ॥

अन्वयः--न जागर्ति न निद्राति न उन्मीलति न मीलति, अहो मुक्तचेतसः का अपि परदशा वर्त्तते ॥ १० ॥

अर्थः--न जागता है, न शयन करता है, न नेत्रोंके पलको खोलता है, न मीचता है, अर्थात् सम्पूर्णविषयोंको ब्रह्मरूप देखता है, इसकारण आश्चर्य है कि, मुक्त है चित्त जिसका ऐसे ज्ञानीकी कोई परम उत्कृष्ट दशा है ॥ १० ॥

सर्वत्र दृश्यते स्वस्थः सर्वत्र विमलाशयः । समस्तवासनामुक्तो मुक्तः सर्वत्र राजते ॥ ११ ॥

अन्वयः--मुक्तः सर्वत्र स्वस्थः सर्वत्र विमलाशयः (च) दृश्यते; (तथा) समस्तवासनामुक्तः (सन्) सर्वत्र राजते ॥ ११ ॥

अर्थः--जीवन्मुक्त ज्ञानीपुरुष सुखदुःखादि सर्वत्र स्वस्थचित्त रहनेवाला, और शत्रुमित्र आदि सबके विषे निर्मल अन्तःकरणवाला (समदर्शी) दीखता है, और सम्पूर्णवासनाओंसे रहित होकर सब अवस्थाओंके विषे आत्मस्वरूपके विषे विराजमान होता है ॥ ११ ॥

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन्गृ-

ह्णन्वदन्व्रजन् । ईहितानीहितैर्मुक्तो
मुक्त एव महाशयः ॥ १२ ॥

अन्वयः—पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गृह्णन् वदन् व्रजन् (अपि) ईहितानीहितैः मुक्तः महाशयः मुक्तः एव ॥ १२ ॥

अर्थः—देखताहुआ, सुनताहुआ, स्पर्श करताहुआ, सूँघताहुआ, ग्रहण करताहुआ, भोजन करताहुआ, कथन करताहुआ, तथा गमन करताहुआ भी, इच्छा और द्वेष करके रहित ब्रह्मके विषे चित्त लगानेवाला मुक्तही है ॥ १२ ॥

न निंदति न च स्तौति न हृष्यति न
कुप्यति । न ददाति न गृह्णाति मुक्तः
सर्वत्र नीरसः ॥ १३ ॥

अन्वयः—मुक्तः न निन्दति, न स्तौति, न हृष्यति, न कुप्यति, न ददाति,न च गृह्णाति, (किन्तु) सर्वत्र नीरसः (भवति) ॥ १३ ॥

अर्थः—जो जीवन्मुक्त ज्ञानी है; वह किसी वस्तुकी न निन्दा करै है, न प्रशंसा करै है, सुखसे प्रसन्न और दुःखसे कोपयुक्त नहीं होय है, तथा किसीको न कुछ देय है, न कुछ ग्रहण करै है, क्योंकि वह जीवन्मुक्त ज्ञानीपुरुष सर्वत्र प्रीतिरहित होय है ॥ १३ ॥

सानुरागां स्त्रियं दृष्ट्वा मृत्युं वा समुप-
स्थितम् । अविह्वलमनाः स्वस्थो
मुक्त एव महाशयः ॥ १४ ॥

अन्वयः—सानुरागाम् स्त्रियम् वा समुपस्थितम् मृत्युम् दृष्ट्वा अविह्वलमनाः स्वस्थः महाशयः मुक्तः एव ॥ १४ ॥

अर्थः—परम प्रेम करनेवाली नवयौवना स्त्रीको देखकर अथवा समीपमें आए महाविकरालमूर्ति मृत्युको देखकर जिसका मन चलायमान नहीं होता है, और धैर्ययुक्त रहता है, वह आत्मस्वरूपके विषे स्थित ज्ञानी मुक्तही है ॥ १४ ॥

सुखे दुःखे नरे नार्यां सम्पत्सु च विप-
त्सुच । विशेषो नैव धीरस्य सर्वत्र स-
मदर्शिनः ॥ १५ ॥

अन्वयः—सुखे दुःखे, नरे नार्य्याम् सम्पत्सु, च विपत्सु च, धीरस्य सर्वत्र समदर्शिनः विशेषः न एव॥ १५॥

अर्थः—सम्पूर्णवस्तुओंके विषे एक आत्मदृष्टि करनेवाले जिस धीरपुरुषका मन सुखके विषे और स्त्री-विलासके विषे तथा सम्पत्तिके विषे प्रसन्न नहीं होता है, और महादुःख तथा विपत्तिके विषे ।यमान नहीं होता है, वही मुक्त है ॥ १५ ॥

न हिंसा नैव कारुण्यं नौद्धत्यं न च दीनता। नाश्चर्य्यं नैव च क्षोभः क्षीण-संसरणे नरे ॥ १६ ॥

अन्वयः—क्षीणसंसरणे नरे हिंसा न, कारुण्यम् न, औद्धत्यम् न, दीनता च एव न, आश्चर्य्यम् न, क्षोभः च एव न ॥ १६ ॥

अर्थः—जिस पुरुषका संसार क्षीण होजाय है अर्थात् देहाभिमान दूर होजाय है, उसका जन्ममृत्यु-रूप बन्धन दूर होजाय है, ऐसे ज्ञानीके मनमें हिंसा कहिये परद्रोह नहीं होय है दयालुता नहीं होय है, उद्धतता नहीं रहै है, दीनता नहीं रहै है, आश्चर्य्य नहीं रहै है, और क्षोभ भी नहीं रहै है, क्योंकि ज्ञानीका एक ब्रह्माकार होजाय है ॥ १६ ॥

न मुक्तो विषयद्वेष्टा न वा विषयलो-लुपः॥ असंसक्तमना नित्यं प्राप्ताप्रा-प्तमुपाश्नुते ॥ १७ ॥

अन्वयः—मुक्तः विषयद्वेष्टा न (भवति), वा विषयलोलुपः (च) न (भवति), (किन्तु) नित्यम् असंसक्तमनाः (सन्) प्राप्ताप्राप्तम् उपाश्नुते ॥१७॥

अर्थः—जीवन्मुक्त पुरुष विषयोंसे द्वेष (विषयोंका

त्याग) नहीं करै है, और विषयोंमें आसक्त भी नहीं होय है, किन्तु विषयासक्तिरहित है मन जिसका ऐसा होकर नित्य प्रारब्धके अनुसार प्राप्त और अप्राप्तको भोगता है ॥ १७ ॥

समाधानासमाधानहिताहितविकल्प-
नाः । शून्यचित्तो न जानाति कैव-
ल्यमिव संस्थितः ॥ १८ ॥

अन्वयः-शून्यचित्तः कैवल्यम् संस्थितः इव समाधानासमाधानहिताहितविकल्पनाः न जानाति ॥ १८ ॥

अर्थः-शून्य है चित्त जिसका ऐसा जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष विदेह कैवल्यदशाको प्राप्त हुयेकी समान समाधान, असमाधान, हित-और अहितकी कल्पनाको नहीं जानता है, क्योंकि उसका मन ब्रह्माकार होजाय है ॥ १८ ॥

निर्ममो निरहंकारो न किञ्चिदिति
निश्चितः । अन्तर्गलितसर्वाशः कुर्व-
न्नपि करोति न ॥ १९ ॥

अन्वयः-निर्ममः निरहङ्कारः किञ्चित् न इति निश्चितः अन्तर्गलितसर्वाशः कुर्वन् अपि न करोति ॥१९॥

अर्थः-जिसकी स्त्रीपुत्रादिके विषे ममता दूर

होगई है, और जिसका देहाभिमान दूर होगया है, तथा ब्रह्मसे अन्य द्वितीय कोई वस्तु नहीं है ऐसा जिसे निश्चय हो गया है, और जिसकी भीतरकी आशा नष्ट होगई है ऐसा ज्ञानी पुरुष विषयभोग करताहुआ भी नहीं करता है, अर्थात् उसमें आसक्ति नहीं करता है ॥ १९ ॥

मनःप्रकाशसंमोहस्वप्नजाड्यविवर्जितः । दशां कामपि सम्प्राप्तो भवेद्गलितमानसः ॥ २० ॥

अन्वयः—मनःप्रकाशसंमोहस्वप्नजाड्यविवर्जितः । गलितमानसः काम् अपि दशाम् सम्प्राप्तः भवेत् ॥ २० ॥

अर्थः—जिसके मनके विषे मोह नहीं है ऐसा जो ज्ञानी पुरुष है उसके मनका प्रकाश तथा अज्ञानरूपी जड़त्व निवृत्ति होजाता है तिस ज्ञानीकी कोई अनिर्वचनीय दशा होती है, अर्थात् उस ज्ञानीकी दशा किसीके जाननेमें नहीं आती है ॥ २० ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां मुरादाबादनिवासिपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकया सहितं तत्त्वज्ञस्वरूपविंशतिकं नाम सप्तदशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १७ ॥

अष्टादशं प्रकरणम् १८.

इसप्रकरणमें शान्तिकी प्रधानता वर्णन करते हुए प्रथम शान्तिका वर्णन करते हैं तहाँ भी प्रथम शान्त-आत्माको नमस्कार करते हैं—

यस्य बोधोदये तावत्स्वप्नवद्भवति भ्रमः। तस्मै सुखैकरूपाय नमः शान्ताय तेजसे ॥ १ ॥

अन्वयः—यस्य बोधोदये भ्रमः स्वप्नवत् भवति; तावत् तस्मै सुखैकरूपाय शान्ताय तेजसे नमः ॥ १ ॥

अर्थः—जिस आत्माका ज्ञान होतेही यह प्रत्यक्ष संसार स्वप्नकी समान मिथ्या भासने लगता है, प्रथम तिस सुखरूप प्रकाशमान् शान्तसङ्कल्पस्वरूप आत्माके अर्थ नमस्कार है ॥ १ ॥

यहाँ शान्तसङ्कल्पस्वरूपकोही सुखरूप कहा, तिसकारण शङ्का होय है कि, धनी पुरुष भी तो सुखी होय हैं फिर शान्तशङ्कल्पकोही सुखरूप किसप्रकार कहा? तिसका समाधान करै हैं कि—

अर्जयित्वाऽखिलानर्थान् भोगानाप्नोति पुष्कलान्। न हि सर्वपरित्यागमन्तरेण सुखी भवेत् ॥ २ ॥

अन्वयः–अखिलान् अर्थान् अर्जयित्वा पुष्कलान् भोगान् आप्नोति, सर्वपरित्यागमन्तरेण सुखी नहि भवेत् ॥ २ ॥

अर्थः–पुरुष धन, धान्य, स्त्री और पुत्र आदि अनेक पदार्थोंको प्राप्त करके अनेकप्रकारके भोगोंकोही भोगता है, सुखरूप नहीं होता है, क्योंकि उन भोगोंके नष्ट होनेपर फिर दुःख प्राप्त होता है, इसकारण सम्पूर्ण सङ्कल्पविकल्पोंका त्याग करै विना सुखरूप कदापि नहीं होसक्ता ॥ २ ॥

मिथ्यारूप जो संकल्पविकल्प है उनको तुच्छ जाननाही संकल्पविकल्पका त्याग है, जैसे वन्ध्यापुत्रको मिथ्यारूप जान लेनाही त्याग है क्योंकि मिथ्यारूप वस्तुका अन्य किसीप्रकारका त्याग नहीं होसक्ता, यह विषय अन्यरीतिसे दिखाते है–

कर्त्तव्यदुःखमार्त्तण्डज्वालादग्धान्त-
रात्मनः ॥ कुतः प्रशमपीयूषधारासा-
रमृते सुखम् ॥ ३ ॥

अन्वयः–कर्त्तव्यदुःखमार्त्तण्डज्वालादग्धान्तरात्मनः प्रशमपीयूषधारा सारम् ऋते सुखं कुतः ? ॥ ३ ॥

अर्थः–नानाप्रकारके जो कर्म्म उनकर्म्मोंसे उत्पन्न होनेवाले जो दुःख वही हुआ सूर्य्यकी किरणोंका अत्यन्त तीक्ष्णताप तिसकरके दग्ध हुआ है अन्तः-

करण जिसका ऐसे पुरुषको संकल्पविकल्पकी शान्ति-रूप अमृतधाराकी वृष्टिके विना सुख कहाँसे होसक्ता है? ॥ ३ ॥

संसाररूपी विषको दूर करनेवाला होनेके कारण संकल्पविकल्पके शान्तिरूपको अमृतरूप करके वर्णन करै हैं कि—

भवोऽयं भावनामात्रो न किञ्चित्पर-
मार्थतः ॥ नास्त्यभावः स्वभावानां
भावाभावविभाविनाम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—अयम् भवः भावनामात्रः परमार्थतः किञ्चित् न (अस्ति); भावाभावविभाविनाम् स्वभा-वानाम् अभावः न अस्ति ॥ ४ ॥

अर्थः—यह संसार संकल्पमात्र है, वास्तवदृष्टिसे एक आत्माके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है, यहां वादी शंका करै है कि—भावरूप जो दृश्यमान जगत् है सो नाश होनेके अनन्तर अभावरूप शून्य होजाय है, इसप्रकार तौ शुन्यवादीका मत सिद्ध होता है? इसके उत्तरमें श्रीगुरु अष्टावक्रजी कहैं है कि—संकल्प-मात्र जगत्के नाश होनेके अनन्तर सत्यस्वभाव आत्मा अखण्डरूपसे विराजमान रहता है, इसकारण संसारका नाश होनेके अनन्तर शून्य नहीं रहता है,

किन्तु उससमय निर्विकल्प-केवलानन्दरूप मुक्त-आत्मा रहता है ॥ ४ ॥

वादी प्रश्न करै है कि, संकल्पविकल्पकी निवृत्ति होतेही आत्माको अमृतत्वकी प्राप्ति किस प्रकार होजाय? तहाँ कहते हैं कि-

न दूरं न च संकोचाल्लब्धमेवात्मनः पदम् ॥ निर्विकल्पं निरायासं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥ ५ ॥

अन्वयः-निर्विकल्पम् निरायासम् निर्विकारम् निरञ्जनम् आत्मनः पदम् न दूरम् न च संकोचात् (किन्तु) लब्धम् एव (अस्ति) ॥ ५ ॥

अर्थः-आत्मस्वरूप दूर नहीं है, किन्तु सदा प्राप्त है, और परिपूर्ण है,तथा संकल्पविकल्परहित है,निरायास कहिये श्रमके विनाही प्राप्त है, विकार जो जन्म और मृत्यु तिनकरके रहित है, और निरञ्जन कहिये माया (अविद्या) रूप उपाधिरहित है, जिसप्रकार कण्ठमें धारणकरी हुई मणि भूलसे दूसरे स्थानमें ढूंढनेसे नहीं मिलैहै,और विस्मृतिके दूर होतेही कण्ठमें प्रतीत होजाय है, तिसीप्रकार अज्ञानसे आत्मा दूर प्रतीत होय है, परन्तु ज्ञान होनेपर प्राप्तही है ॥ ५ ॥

तत्त्वज्ञानसे आत्मप्राप्ति होय है, ऐसा जो शास्त्र-कारोंका व्यवहार है सो किसप्रकार होय है ? और यदि आत्मा नित्य प्राप्तही है तो गुरुके उपदेश और शास्त्राभ्यासकी क्या आवश्यकता है ? तहाँ कहते हैं कि-

व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमा-
त्रतः । वीतशोका विराजन्ते निराव-
रणदृष्टयः ॥ ६ ॥

अन्वयः-निरावरणदृष्टयः व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमात्रतः वीतशोकाः (संतः) विराजन्ते ॥ ६ ॥

अर्थः-केवल अज्ञानरूपी मोहका परदा पड़ रहा है, तिससे आत्मस्वरूपका प्रकाश नहीं होय है; इसकारण सद्गुरुके उपदेशसे मोहको दूर करके जिसने स्वरूपका निश्चय करा है, ऐसा जो ज्ञानी है, वह जगत्में शोभायमान होता है और उसकी दृष्टिपर फिर मोहरूपी परदा नहीं पड़ता है ॥ ६ ॥

समस्तं कल्पनामात्रमात्मामुक्तः
सनातनः । इति विज्ञाय धीरो हि कि-
मभ्यस्यति बालवत् ॥ ७ ॥

अन्वयः-समस्तम् कल्पनामात्रम्, आत्मा सनातनः मुक्तः धीरः, इति विज्ञायहि बालवत् किम् अभ्यस्यति ॥७॥

अर्थः—यह सम्पूर्ण जगत् कल्पनामात्र है और आत्मा नित्यमुक्त है; ज्ञानी पुरुष इसप्रकार जानकर क्या फिर बालककी समान सांसारिक व्यवहार करता है ? अर्थात् कदापि नहीं करता है ॥ ७ ॥

सम्पूर्ण कल्पनामात्र है, इस ज्ञानका मूल कारण जो तत्त्वंपदार्थका ऐक्यज्ञान कहते हैं कि—

आत्मा ब्रह्मेति निश्चित्य भावाभावौ च कल्पितौ । निष्कामः किं विजानाति किं ब्रूते च करोति किम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—आत्मा ब्रह्म, भावाभावौ च कल्पितौ इति निश्चित्य निष्कामः (सन्) किं विजानाति, किं, ब्रूते किं च करोति ॥ ८ ॥

अर्थः—आत्मा कहिये जीवात्मा जो 'त्वम्' पदार्थ है, और ब्रह्म जो तत्पदार्थ है, यह दोनों अभिन्न हैं और अधिष्ठानरूप ब्रह्मका साक्षात्कार होनेपर भाव, अभाव रूप सम्पूर्ण घटादि दृश्य पदार्थ कल्पित हैं ऐसा निश्चय करके निष्काम होता हुआ ज्ञानी क्या जानता है क्या कहता है ? और क्या करता है ? अर्थात् मनके ब्रह्माकार होनेके कारण न कुछ जानता है, न कुछ कहता है, और न कुछ करता है, किन्तु आत्मस्वरूपमें स्थित होता है ॥ ८ ॥

आत्मज्ञानसे सम्पूर्ण कल्पना निवृत्त हो जाती हैं यह दिखाते हैं-

अयं सोऽहमयं नाहमिति क्षीणा
विकल्पनाः । सर्वमात्मेति निश्चित्य
तूष्णींभूतस्य योगिनः ॥ ९ ॥

अन्वयः-सर्वम् आत्मा इति निश्चित्य तूष्णींभूतस्य योगिनः अयम् सः अहम्, अयम् अहम् न इति विकल्पनाः क्षीणाः (भवन्ति) ॥ ९ ॥

अर्थः-जिस पुरुषको सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मरूप भासता है वह पुरुष मुनिव्रतरूपी योगदशाको प्राप्त होता है, क्योंकि उस पुरुषका मन वृत्तिरहित होकर ब्रह्मके विषे एकाकार हो जाता है, तदनन्तर उस पुरुषको अपना तथा परका ज्ञान नहीं रहता है, अर्थात् मैं ध्यान करता हूं और दूसरा पुरुष अन्य कार्य करता है, यह अज्ञान दूर हो जाता है. तात्पर्य यह है कि, उसपुरुषकी कल्पनामात्र नष्ट हो जाती है ॥ ९ ॥

अब संकल्पविकल्परहित पुरुषका स्वरूप दिखाते हैं-

न विक्षेपो न चैकाग्र्यं नातिबोधो
न मूढता न सुखं न च वा दुःखमुपशान्तस्य योगिनः ॥ १० ॥

अन्वयः—उपशान्तस्य योगिनः विक्षेपः न, ऐकाग्र्यम् च न अतिबोधः न, मूढ़ता न, सुखम् न वा, दुःखम् च न (भवति) ॥ १० ॥

अर्थः—जो पुरुष संकल्पविकल्परहित होकर शान्तिको प्राप्त होता है, उस शान्तस्वभाव योगीके मनको किसी बातका विक्षेप नहीं होता है, एकाग्रता नहीं होती है, अत्यन्त ज्ञान अथवा मूढ़ता नहीं होती है, सुख नहीं होता है और दुःखभी नहीं होता है, क्योंकि वह केवल ब्रह्मानन्दस्वरूप होता है ॥ १० ॥

स्वाराज्ये भैक्ष्यवृत्तौ च लाभालाभे
जने वने ॥ निर्विकल्पस्वभावस्य न
विशेषोऽस्ति योगिनः ॥ ११ ॥

अन्वयः—निर्विकल्पस्वभावस्य योगिनः स्वाराज्ये भैक्ष्यवृत्तौ लाभालाभे जने वने च विशेषः न अस्ति ११

अर्थः—संकल्प और विकल्पकरके रहित है स्वभाव जिसका ऐसे योगी (ज्ञानीको) स्वर्गका राज्य मिलनेसे, प्रारब्धकर्मानुसार प्राप्तहुए वस्तुसे तथा जनसमूहमें निवास होनेसे कुछ प्रसन्नता नहीं होती है, और भिक्षा मांगकर निर्वाह करनेसे, किसी पदार्थकी प्राप्ति न होनेसे तथा निर्जनस्थानमें रहनेसे कुछ अप्रसन्नता

नहीं होती है, क्योंकि उसका मन तो ब्रह्माकार होता है ॥ ११ ॥

क्व धर्म्मः क्व च वा कामः क्व चार्थः क्व विवेकिता ॥ इदं कृतमिदं नेति द्वन्द्वै-र्मुक्तस्य योगिनः ॥ १२ ॥

अन्वयः—इदम् कृतम्, इदम् न, (कृतम्), इति द्वन्द्वैः मुक्तस्य योगिनः धर्म्मः क्व, कामः च क्व, अर्थः क्व वा विवेकिता च क्व ॥ १२ ॥

अर्थः—यह करा, यह नहीं करा, इत्यादि द्वन्द्वों करके रहित योगीको धर्म्म कहाँ, काम कहाँ, अर्थ कहाँ, और मोक्षका उपायरूप ज्ञान कहाँ? क्योंकि जब धर्म्मा-दिका कारण अविद्या और संकल्पविकल्पादिही नहीं होते तो धर्म्मादि किसप्रकार हो सकते हैं ॥ १२ ॥

कृत्यं किमपि नैवास्ति न कापि हृदि रञ्जना। यथाजीवनमेवेह जीवन्मुक्त-स्य योगिनः ॥ १३ ॥

अन्वयः—जीवन्मुक्तस्य योगिनः इह किम् अपि कृ-त्यम् न एव अस्ति, (तथा) हृदि का अपि रञ्जना न (अस्ति),किन्तु यथाजीवनम् एव (भवति) १३ ॥

अर्थः—जीवन्मुक्तयोगीको इस संसारमें कुछभी करनेको नहीं होता है और हृदयकेविषे कोई अनु-

रागभी नहीं होता है, तथापि जीवन्मुक्त पुरुष जीवन-के हेतु अदृष्टके अनुसार कर्म करता है ॥ १३ ॥

क्व मोहः क्व च वा विश्वं क्व तद्ध्यानं क्व मुक्तता ॥ सर्वसंकल्पसीमायां विश्रान्तस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

अन्वयः–सर्वसङ्कल्पसीमायाम् विश्रान्तस्य महात्मनः मोहः क्व, विश्वम् क्व, तद्ध्यानम् क्व वा, मुक्तता च क्व ॥ १४ ॥

अर्थः–सम्पूर्ण संकल्पोंकी सीमा कहिये अवधि जो आत्मज्ञान तिसकेविषे विश्रामको प्राप्त होनेवाले योगीको मोह कहाँ ? और विश्व कहाँ ? और विश्वका चिन्तन कहाँ? तथा मुक्तपना कहाँ? क्योंकि वह तो ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ॥ १४ ॥

येन विश्वमिदं दृष्टं स नास्तीति करोतु वै ॥ निर्वासनः किं कुरुतेपश्यन्नपि न पश्यति ॥ १५ ॥

अन्वयः–येन इदम् विश्वम् दृष्टम् सः वै न अस्ति, इति करोतु (यः) पश्यन् अपि न पश्यति (सः) निर्वासनः (सन्) किम् कुरुते ॥ १५ ॥

अर्थः–जिसने यह घटादि विश्व देखा है, वह कदा-

चित् घटादि विश्व नहीं है ऐसा जानै, परन्तु जो देखताहुआभी नहीं देखता है, वह वासनारहित होकर क्या करै? अर्थात् कुछभी नहीं, अर्थात् जिसको वासनाओंका संस्कारही नहीं है वह त्यागही क्या करै॥१५॥

येन दृष्टं परं ब्रह्म सोऽहं ब्रह्मेति चिन्तयेत्। किं चिन्तयति निश्चिन्तो द्वितीयं यो न पश्यति ॥ १६ ॥

अन्वयः—येन परम् ब्रह्म दृष्टम् सः अहम् 'ब्रह्म' इति चिन्तयेत्, यः (तु) द्वितीयम् न पश्यति (सः) निश्चिन्तः (सन्) किम् चिन्तयति ॥ १६ ॥

अर्थः—जो पुरुष परब्रह्मको देखै, वह 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा चिन्तन करै, और जो द्वितीयको देखताही नहीं है, वह निश्चिन्त होकर क्या चिन्तन करैगा? अर्थात् कुछभी चिन्तन नहीं करैगा, अर्थात् जिसकी द्वैतदृष्टि नहीं है उसे ब्रह्मचिन्तन करनेकोभी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ १६ ॥

दृष्टो येनात्मविक्षेपो निरोधं कुरुते त्वसौ। उदारस्तु न विक्षिप्तः साध्याभावात्करोति किम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—येन आत्मविक्षेपः दृष्टः असौ तु निरोधम्

कुरुते, उदारः तु विक्षिप्तः न भवति; (सः) साध्याभावात् किम् करोति ? ॥ १७ ॥

अर्थः—अन्तःकरणका विक्षेप जिस पुरुषके देखनेमें आता होय वह मनको वशमें करनेका उपाय करै, और जो सर्वत्र एक ब्रह्मकोही देखता है, उसके तो विक्षेप हैही नहीं, उसको कुछ साधनेयोग्य नहीं होताहै, इसकारण वह कुछ साधनभी नहीं करताहै ॥ १७ ॥

धीरो लोकविपर्यस्तो वर्त्तमानोऽपि लोकवत् ॥ न समाधिं न विक्षेपं न लेपं स्वस्य पश्यति ॥ १८ ॥

अन्वयः—लोकविपर्यस्तः धीरः लोकवत् वर्त्तमानः अपि स्वस्य समाधिम् विक्षेपम् न (तथा) लेपम् (च) न पश्यति ॥ १८ ॥

अर्थः—संसारके विक्षेपोंकरके रहित धीरपुरुष संसारी पुरुषकी समान वर्त्ताव करताहुआभी अपनेविषे समाधिको नहीं माने है, विक्षेप नहीं माने है, तथा किसी कार्य्यमें आसक्तिभी नहीं माने है ॥ १८ ॥

भावाभावविहीनो यस्तृप्तो निर्वासनो बुधः । नैव किञ्चित्कृतं तेन लोकदृष्ट्या विकुर्वता ॥ १९ ॥

अन्वयः—यः बुधः तृप्तः भावाभावविहीनः (तथा) निर्वासनः (भवति) लोकदृष्ट्या विकुर्वता (अपि) तेन किञ्चित् न एव कृतम् ॥ १९ ॥

अर्थः—जो ज्ञानी है वह अपने आनन्द परिपूर्ण रहता है; इसकारण किसीकी स्तुति निन्दा नहीं करता है. लोक तो यह देखै हैं कि, ज्ञानी अनेकप्रकारकी क्रिया करै हैं, परन्तु ज्ञानी आसक्तिपूर्वक कोई भी क्रिया नहीं करै हैं, क्योंकि ज्ञानीको अभिमान नहीं होय है ॥ १९ ॥

प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा नैव धीरस्य दुर्ग्रहः। यदा यत्कर्त्तुमायाति तत्कृत्वा तिष्ठतः सुखम् ॥ २० ॥

अन्वयः—यदा यत् कर्तुम् आयाति तत् सुखम् कृत्वा तिष्ठतः धीरस्य प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ दुर्ग्रहः न एव (भवति) ॥ २० ॥

अर्थः—प्रारब्धके अनुसार जो प्रवृत्त अथवा निवृत्त कर्म्म जब करनेमें आवै, उसको अनायासहीमें करके स्थित होनेवाले धीर पुरुषको प्रवृत्तिकेविषे अथवा निवृत्तिकेविषे दुराग्रह नहीं होता है ॥ २० ॥

यहाँ वादी शंका करै है कि, तुम तो ज्ञानीको वासना रहित कह रहेहो फिर वह प्रवृत्त अथवा निवृत्त कर्म्म किसप्रकारसे करै है? तहाँ कहते हैं कि—

निर्वासनो निरालम्बः स्वच्छन्दो मुक्तबन्धनः। क्षिप्तः संस्कारवातेन चेष्टते शुष्कपर्णवत् ॥ २१ ॥

अन्वयः—निर्वासनः निरालम्बः स्वच्छन्दः मुक्तबन्धनः (ज्ञानी) संस्कारवातेन क्षिप्तः (सन्) शुष्कपर्णवत् चेष्टते ॥ २१ ॥

अर्थः—ज्ञानी वासना रहित है। ज्ञानीको किसीका आधार नहीं लेना पड़ता है, इसकारणही स्वाधीन होता है, तथा ज्ञानीको राग द्वेष नहीं है, परन्तु जो प्रारब्धके अनुसार प्राप्त होय है, उसको करै है. जिसप्रकार पृथ्वीके ऊपर पड़ेहुए सूखे पत्तोंमें कहाँ जानेकी अथवा स्थित होनेकी वासना (सामर्थ्य) नहीं होय है, परंतु जिस दिशाका वायु आवै है उसी दिशाको पत्ते उड़ने लगैं हैं, इसीप्रकार ज्ञानी प्रारब्धके अनुसार भोग चेष्टा करै है ॥ २१ ॥

असंसारस्य तु क्वापि न हर्षो न विषादता। स शीतलमना नित्यं विदेह इव राजते ॥ २२ ॥

अन्वयः—असंसारस्य तु क्व, अपि हर्षः न (भवति); विषादता (च) न (भवति) नित्यम् शीतलमनाः सः विदेहः इव राजते ॥ २२ ॥

अर्थः-जिसके संसारके हेतु जो संकल्पविकल्प सो दूर होजाँय है, उस असारी पुरुषको हर्ष होय है न विषाद होय है, अर्थात् उसके चित्तमें हर्ष आदि छः ऊर्मि नहीं उत्पन्न होय हैं, वह नित्य शीतलमनवाला मुक्तकी समान विराजमान होय है ॥ २२ ॥

कुत्रापि न जिहासास्ति नाशो वापि
न कुत्रचित्। आत्मारामस्य धीरस्य
शीतलाच्छतरात्मनः ॥ २३ ॥

अन्वयः-शीतलाच्छतरात्मनः आत्मारामस्य धीरस्य कुत्र अपि जिहासा न (अस्ति) वा कुत्रचित् अपि नाश न (अस्ति) ॥ २३ ॥

अर्थः-जो पुरुष आत्माकेविषे रमण करता है, धीरजमान होता है, और उस पुरुषका अंतःकरण परमपवित्र और शीतल होता है, उसको किसी वस्तुके त्यागनेकी इच्छा नहीं होय है, और किसी वस्तुके ग्रहण करनेकी भी इच्छा नहीं होय है, क्योंकि उस ज्ञानीके राग द्वेषका लेशमात्र भी नहीं होय है, और उस ज्ञानीका कहीं अनर्थ भी नहीं होय हैं, क्योंकि अनर्थका हेतु जो अज्ञान सो उसके विषे नहीं होय है ॥ २३ ॥

प्रकृत्या शून्यचित्तस्य कुर्वतोऽस्य

यदृच्छया । प्राकृतस्येव धीरस्य न मानो नावमानता ॥ २४ ॥

अन्वयः—प्रकृत्या शून्यचित्तस्य प्राकृतस्य इव यदृच्छया कुर्वतः अस्य धीरस्य मानः न (वा) अवमानता न ॥ २४ ॥

अर्थः—स्वभाव करकेही जिसका चित्त संकल्प विकल्परूप विकार करके रहित है और प्रारब्धानुसार प्रवृत्त निवृत्त कर्मोंको अज्ञानीकी समान करै है, ऐसे धीर कहिये ज्ञानीको मान और अपमानका अनुसन्धान नहीं होय है ॥ २४ ॥

कृतं देहे न कर्म्मेदं न मया शुद्धरूपि-णा । इति चिन्तानुरोधी यः कुर्वन्नपि करोति न ॥ २५ ॥

अन्वयः—इदम् कर्म्म देहेन कृतम् शुद्धरूपिणा मया न (कृतम्) यः इति चिन्तानुरोधी (सः) कुर्वन् अपि न करोति ॥ २५ ॥

अर्थः—सम्पूर्ण कर्म्म क्रिया देह करै है मैं नहीं करूँ हूँ क्योंकि मैं तो शुद्धरूप साक्षी हूँ. इसप्रकार जो विचारता है, वह पुरुष कर्म्म करताहुआ भी बन्धनको नहीं प्राप्त होय है, क्योंकि उसको कर्म्म करनेका अभिमान नहीं होय है ॥ २५ ॥

अतद्वादीव कुरुते न भवेदपि बालि-
शः॥ जीवन्मुक्तः सुखी श्रीमान्संसर-
न्नपि शोभते॥ २६॥

अन्वयः—जीवन्मुक्तः अतद्वादी-इव कुरुते; (तथा) अपि बालिशः न भवेत् (अतः एव) संसरन्-अपि सुखी श्रीमान् शोभते॥ २६॥

अर्थः—कियेहुए कार्य्यको "मैं करता हूँ" ऐसे नहीं कहताहुआ जीवन्मुक्त पुरुष कार्य्यको करताहु-आ भी मूर्ख नहीं होता है, क्योंकि अन्तःकरणके विषे ज्ञानवान् होय है, इस कारणही संसारके व्यवहारको करताहुआ भी भीतर सुखी और शोभायमान होता है॥ २६॥

नानाविचारसुश्रान्तो धीरो विश्रान्ति-
मागतः। न कल्पते न जानाति न शृ-
णोति न पश्यति॥ २७॥

अन्वयः—नानाविचारसुश्रान्तः विश्रान्तिम् आगतः धीरः न कल्पते न जानाति न शृणोति न पश्यति॥२७॥

अर्थः—नानाप्रकारके संकल्प विकल्परूप विचारों-से रहित होकर आत्माकेविषे विश्रामको प्राप्त हुआ धीर कहिये ज्ञानीपुरुष संकल्प विकल्परूप मनके

व्यापारको नहीं करता है, और न जाने है,तथा बुद्धिके व्यापारको नहीं करै है, शब्दको नहीं सुनै है, रूपको नहीं देखै है, अर्थात् इंद्रियमात्रके व्यापारको नहीं करै है, क्योंकि उसे कर्त्तृत्वका अभिमान कदापि नहीं होय है ॥ २७ ॥

असमाधेरविक्षेपान्न मुमुक्षुर्न चेतरः ।
निश्चित्य कल्पितं पश्यन्ब्रह्मैवास्ते महाशयः ॥ २८ ॥

अन्वयः-(ज्ञानी) असमाधेः मुमुक्षुः न अविक्षेपात् इतरः च न (सर्वम्) कल्पितम् (इति) निश्चित्य पश्यन् (अपि) महाशयः ब्रह्म एव आस्ते ॥ २८ ॥

अर्थः-ज्ञानी मुमुक्षु नहीं होय है क्योंकि समाधि नहीं करै है और बद्धभी नहीं होय है, क्योंकि ज्ञानीके विषे विक्षेप कहिये द्वैत भ्रम नहीं होय है, किन्तु यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् कल्पित है ऐसा निश्चय करके तदनन्तर बाधित प्रपञ्चकी प्रतीतिसे देखता हुआ भी निर्विकार चित्त होता है इसकारण साक्षात् ब्रह्मस्वरूप होकर स्थित होय ॥ २८ ॥

तहां वादी शंका करै है कि, संसारको देखता हुआ भी ब्रह्मरूप किसप्रकार होसकै है तिसका समाधान करते हैं कि-

यस्यान्तः स्यादहङ्कारो न करोति करोति सः । निरहङ्कारधीरेण न किञ्चिद्धि कृतं कृतम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—यस्य अन्तः अहङ्कारः स्यात् सः न करोति (अपि) करोति निरहङ्कारधीरेण हि कृतम् (अपि) किञ्चित् न कृतम् ॥ २९ ॥

अर्थः—जिसके अन्तःकरणकेविषे अहंकारका अध्यास होता है, वह पुरुष लोकदृष्टिसे न करता हुआ भी संकल्प विकल्प करता है, क्योंकि उसको कर्तृत्वका अध्यास होय है । और अहंकार रहित जो धीर कहिये ज्ञानीपुरुष है, वह लोकदृष्टिसे कार्य्य करता हुआ भी अपनी दृष्टिसे नहीं करै है क्योंकि उसको कर्तृत्वका अभिमान नहीं होय है ॥ २९ ॥

नोद्विग्नं न च सन्तुष्टमकर्त्तृस्पन्दवर्जितम् । निराशं गतसन्देहं चित्तं मुक्तस्य राजते ॥ ३० ॥

अन्वयः—मुक्तस्य चित्तम् उद्विग्नम् न (भवति) सन्तुष्टम् च न (भवति) अकर्त्तृस्पंदवर्जितम् निराशम् गतसन्देहम् राजते ॥ ३० ॥

अर्थः—जो जीवन्मुक्त पुरुष है उसके चित्तमें कभी उद्वेग (घबड़ाहट) नहीं होता है तिसीप्रकार सन्तोष

भी नहीं होता है, क्योंकि कर्त्तापनेके अभिमानका उसके विषे लेश भी नहीं होय है, तिसीप्रकार उसको आशा तथा सन्देह भी नहीं होता है, क्योंकि वह तो सदा जीवन्मुक्त है ॥ ३० ॥

निर्ध्यातुं चेष्टितुं वापि यच्चित्तं न प्रवर्त्तते । निर्निमित्तमिदं किन्तु निर्ध्याति विचेष्टते ॥ ३१ ॥

अन्वयः--यच्चित्तम् निर्ध्यातुम् अपि वा चेष्टितुम् न प्रवर्त्तते किन्तु इदम् निर्निमित्तम् निर्ध्यायति विचेष्टते ॥ ३१ ॥

अर्थः--जिस ज्ञानीका चित्त क्रियारहित होकर स्थित होनेको, अथवा संकल्प विकल्पादि रूप चेष्टा करनेको प्रवृत्त नहीं होता है; परन्तु ज्ञानीका चित्त निमित्त कहिये संकल्पविकल्परहित होकर आत्मस्वरूपकेविषे निश्चल स्थित होता है. तथा अनेक प्रकारकी संकल्पविकल्परूप चेष्टाभी करता है ॥३१॥

तत्त्वं यथार्थमाकर्ण्य मन्दः प्राप्नोति मूढताम् । अथवा याति संकोचममूढः कोऽपिमूढवत् ॥ ३२ ॥

अन्वयः--मन्दः यथार्थम् तत्त्वम् आकर्ण्य मूढताम्

प्राप्नोति अथवा संकोचम् आयाति कः अपि अमूढः (अपि) मूढवत् (भवति) ॥ ३२ ॥

अर्थः—कोई अज्ञानी श्रुतिसे यथार्थतत्त्व (तत् और त्वम् पदार्थके कल्पित भेद) को श्रवण करके असंभावना और विपरीत भावनाओंके द्वारा अर्थात् संशय और विपर्य्यय करके मूढ़ताको प्राप्त होता है, अथवा तत्-त्वम् पदार्थके भेदको जाननेके निमित्त संकोच कहिये चित्तकी समाधि लगाता है, और कोई ज्ञानी भी बाहरकी गतिसे मूढकी समान बाहरके व्यवहारोंको करता है ॥ ३२ ॥

एकाग्रता निरोधो वा मूढैरभ्यस्यते भृशम् ॥ धीराः कृत्यं न पश्यन्ति सुप्तवत् स्वपदे स्थिताः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—मूढैः एकाग्रता वा निरोधः भृशम् अभ्यस्यते स्वपदे स्थिताः धीराः सुप्तवत् कृत्यम् न पश्यन्ति ॥ ३३ ॥

अर्थः—जो देहाभिमानी मूर्ख हैं वे मनको वशमें करनेके अर्थ अनेक प्रकारका अभ्यास करते हैं, परन्तु उनका मन वशमें नहीं होता है; और जो आत्मज्ञानी धैर्य्यवान् पुरुष है, वह आत्मस्वरूपके विषे स्थितिको प्राप्त होता है, उसका मन तो स्वभावसेही वशीभूत

होय है, जिसप्रकार निद्राके समयमें मनकी चेष्टा बन्द होजाती है; तिसीप्रकार ज्ञान होनेपर मनकी चेष्टा बन्द होजाती है, क्योंकि अद्वैतात्मस्वरूपके ज्ञानसे भ्रममात्रकी निवृत्ति होजाती है ॥ ३३ ॥

अप्रयत्नात्प्रयत्नाद्वा मूढो नाप्नोति निर्वृतिम् ॥ तत्त्वनिश्चयमात्रेण प्राज्ञो भवति निर्वृतः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—मूढः अप्रत्नात् वा प्रयत्नात् (अपि) निर्वृतिम् न आप्नोति प्राज्ञः तत्त्वनिश्चयमात्रेण निर्वृतः भवति ॥ ३४ ॥

अर्थः—जो मूढपुरुष है और जिसको आत्मज्ञान नहीं हुआ है वह अनेक प्रकारका अभ्यास करके मनको वशमें करै, अथवा न करै तौभी उसको निवृत्तिका सुख नहीं प्राप्त होता है; और जो आत्मज्ञानी हैं, उसने तो ज्योंही आत्मस्वरूपका निश्चय करा कि, वह परम निवृत्तिके खको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

शुद्धं बुद्धं प्रिय पूण निष्प्रपञ्चं निरामयम् ॥ आत्मानं तं न जानन्ति तत्राभ्यासपरा जनाः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—तत्र अभ्यासपराः जनाः शुद्धम् बुद्धम्

प्रियम् पूर्णम् निष्प्रपञ्चम् निरामयम् तम् आत्मानम् न जानन्ति ॥ ३५ ॥

अर्थः—सद्गुरु और वेदान्त वाक्योंकी शरणालिये विना देहाभिमान दूर नहीं होता है, तिस देहाभिमानसे मन जगत्केविषे आसक्त रहता है, तिसकारण वह पुरुष आत्मस्वरूपको नहीं जानै है क्योंकि आत्मस्वरूप तौ शुद्ध है, चैतन्यस्वरूप है और आनन्दरूप परिपूर्ण, संसारकी उपाधिसे रहित, तथा त्रिविधताप रहित है, इसकारण देहाभिमानी पुरुषको उसका ज्ञान नहीं होय है ॥ ३५ ॥

नाप्नोति कर्म्मणा मोक्षं विमूढोऽभ्यासरूपिणा ॥ धन्यो विज्ञानमात्रेण मुक्तस्तिष्ठत्यविक्रियः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—विमूढः अभ्यासरूपिणा कर्म्मणा मोक्षम् न आप्नोति धन्यः विज्ञानमात्रेण अविक्रियः मुक्तः तिष्ठति ॥ ३६ ॥

अर्थः—जो पुरुष देहाभिमानी है वह योगाभ्यासरूप कर्म्म करके मोक्षको नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, कर्म्ममात्रसे मोक्षप्राप्ति होना दुर्लभ है. सोई श्रुतिमें भी कहा है कि "न कर्म्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः" योगाभ्यास आदि

कर्म्मसे मोक्ष नहीं होता है, सन्तान उत्पन्न करनेसे मोक्ष नहीं होता है, धन प्राप्त करनेसे मोक्ष नहीं होता है, यदि किन्ही ज्ञानियोंको मोक्षकी प्राप्ति हुई है तो देहाभिमानके त्यागसेही हुई है इसकारण कोई भाग्य-वान् विरला पुरुषही आत्मज्ञानकी प्राप्तिमात्रसे त्याग दिये हैं सम्पूर्ण संकल्प विकल्पादि जिसने ऐसा होकर मुक्त होजाता है ॥ ३६ ॥

मूढो नाप्नोति तद्ब्रह्म यतो भवितुमि-
च्छति ॥ अनिच्छन्नपि धीरो हि पर-
ब्रह्मस्वरूपभाक् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—यतः मूढः ब्रह्म भवितुम् इच्छति (अतः) तत् न आप्नोति हि धीरः अनिच्छन्-अपि परब्रह्म-स्वरूपभाक् भवति ॥ ३७ ॥

अर्थः—मूढपुरुष योगाभ्यासरूप कर्म्मकरके ब्रह्म-रूप होनेकी इच्छा करता है, इसकारण ब्रह्मको नहीं प्राप्त होता है, और ज्ञाता तो मोक्षकी इच्छा न करे तो भी परब्रह्मके स्वरूपको प्राप्त है क्योंकि उसका देहाभि-मान दूर होगया है ॥ ३७ ॥

निराधारा ग्रहव्यग्रा मूढाः संसारपो-
षकाः । एतस्यानर्थमूलस्य मूल-
च्छेदः कृतो बुधैः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—मूढाः निराधाराः ग्रहव्यग्राः संसारपोषकाः (भवन्ति); बुधैः अनर्थमूलस्य एतस्य मूलच्छेदः कृतः ॥ ३८ ॥

अर्थः—मूढ़ जो अज्ञानी पुरुष हैं वह सद्गुरु और वेदान्तवाक्योंके आधारके विनाही केवल योगाभ्यासरूप कर्म्म करकेही मैं मुक्त होजाऊँगा इस प्रकार निरर्थक दुराग्रह करनेवाले और संसारको पुष्ट करनेवाले होते हैं, क्योंकि संसारको दूर करनेवाला जो ज्ञान तिसका उनकेविषे लेश भी नहीं होय है और ज्ञानी पुरुष जो हैं उन्होंने जन्ममरणरूप अनर्थके मूल कारण इस संसारकी ज्ञानकेद्वारा मूलसेही छेदन करदिया है ॥ ३८ ॥

न शान्तिं लभते मूढो यतः शमितुमिच्छति ॥ धीरस्तत्त्वं विनिश्चित्य सर्वदा शान्तमानसः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—यतः मूढः शमितुम् इच्छति (अतः) शान्तिम् न लभते; धीरः तत्त्वम् विनिश्चित्य सर्वदा शान्तमानसः (भवति) ॥ ३९ ॥

अर्थः—जो मूढ़ कहिये देहाभिमानी पुरुष है वह योगाभ्यासकेद्वारा शान्तिकी इच्छा करता है, परन्तु योगाभ्याससे शान्तिको प्राप्त नहीं होता है, और ज्ञानी-

पुरुष आत्मतत्त्वका निश्चय करके सदा शान्तमन रहता है ॥ ३९ ॥

क्वात्मनो दर्शनं तस्य यद्दृष्टमवलम्बते ॥ धीरास्तं तं न पश्यन्ति पश्यन्त्यात्मानमव्ययम् ॥ ४० ॥

अन्वयः--यत् दृष्टम् अवलम्बते तस्य आत्मनः दर्शनम् क्व; ते धीराः तम् न पश्यन्ति (किन्तु) तम् अव्ययम् आत्मानम् पश्यन्ति ॥ ४० ॥

अर्थः--जो अज्ञानी पुरुष दृष्टपदार्थोंको सत्य मानता है, उसको आत्मदर्शन किसप्रकार होसक्ता है ? परन्तु धैर्यवान् पुरुष तिन दृष्टपदार्थोंको सत्य नहीं मानता है, किन्तु एक अविनाशी आत्माको देखता है ॥ ४० ॥

क्व निरोधो विमूढस्य यो निर्बन्धं करोति वै ॥ स्वारामस्यैव धीरस्य सर्वदासावकृत्रिमः ॥ ४१ ॥

अन्वयः--यः वै निर्बन्धम् करोति, (तस्य) विमूढस्य निरोधः क्व; स्वारामस्य धीरस्य एव असौ सर्वदा अकृत्रिमः (भवति) ॥ ४१ ॥

अर्थः--जो मूढ़ देहाभिमानी पुरुष शुष्क चित्तनिरोधके विषे दुराग्रह करता है, तिस मूढ़के चित्तका निरोध

किसप्रकार होसकै है? अर्थात् उसके चित्तका निरोध कदापि नहीं होसकै है, क्योंकि समाधिके अनन्तर अज्ञानीका चित्त फिर सङ्कल्पविकल्पयुक्त होजा य है और, आत्माराम धीरपुरुषके चित्तका निरोध स्वाभाविकही होय है; क्योंकि उसका चित्त सङ्कल्पादिरहित निश्चल और ब्रह्माकार होय है ॥ ४१ ॥

भावस्य भावकः कश्चिन्न किञ्चिद्भावकोऽपरः॥ उभयाभावकः कश्चिदेवमेव निराकुलः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—कश्चित् भावस्य भावकः अपरः न किञ्चित् भावकः एवम् कश्चित् उभयाभावकः एव निराकुलः आस्ते ॥ ४२ ॥

अर्थः—कोई नैय्यायिक आदि ऐसा मानते हैं कि, यह जगत् वास्तवमें सत्य है, और कोई शून्यवादी ऐसा मानते हैं कि—कुछ भी नहीं है, और हजारो एक-आदमी आत्माका अनुभव करनेवाला अभाव और भाव दोनोंको न मानकर स्वस्थचित्तवाला रहता है ४२

शुद्धमद्वयमात्मानं भावयन्ति कुबुद्धयः॥ न तु जानन्ति संमोहाद्यावज्जीवमनिर्वृताः ॥ ४३ ॥

अन्वयः–कुबुद्धयः शुद्धम् अद्वयम् आत्मानम् भावयन्ति, जानन्ति तु न; संमोहात् यावज्जीवम् अनिर्वृताः (भवन्ति) ॥ ४३ ॥

अर्थः–मूढ़बुद्धि अर्थात् देहाभिमानी पुरुष आत्माका चिन्तन करते हैं, परन्तु जानते नहीं; क्योंकि मोहकरके युक्त होय है. इसकारणही जन्मभर उनकी सङ्कल्पविकल्पोंसे निवृत्ति नहीं होती है, अतएव सन्तोषको भी नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥

मुमुक्षोर्बुद्धिरालम्बमन्तरेण न विद्यते ॥ निरालम्बैव निष्कामा बुद्धिर्मुक्तस्य सर्वदा ॥ ४४ ॥

अन्वयः–मुमुक्षोः बुद्धिः आलम्बम् अन्तरेण न विद्यते; मुक्तस्य बुद्धिः सर्वदा निरालम्बा निष्कामा एव ४४

अर्थः–जिसको आत्माका साक्षात्कार नहीं हुआ है ऐसे मुमुक्षुपुरुषकी बुद्धि सधर्म्मकवस्तुरूप आश्रयके विना नहीं होय है, और जीवन्मुक्तपुरुषकी बुद्धि मुक्तिविषयमें भी इच्छारहित और सदा निरालम्ब (निर्विशेष आत्मानुभवरूप) होती है ॥ ४४ ॥

विषयद्वीपिनो वीक्ष्य चकिताः शरणार्थिनः ॥ विशन्ति झटिति क्रोडं निरोधैकाग्रसिद्धये ॥ ४५ ॥

अन्वयः—विषयद्वीपिनः वीक्ष्य चकिताः शरणार्थिनः (मूढाः) निरोधैकाग्रसिद्धये झटिति क्रोडम् विशन्ति ॥ ४५ ॥

अर्थः—विषयरूपव्याघ्रको देखकर भयभीत हुए, रक्षाकी इच्छा करनेवाले अज्ञानी पुरुषही जल्दीसे चित्तका निरोध और एकाग्रताकी सिद्धिके अर्थ गुहाके भीतर घुसते हैं, ज्ञानी नहीं घुसते हैं ॥ ४५ ॥

निर्वासनं हरिं दृष्ट्वा तूष्णीं विषयद-
न्तिनः ॥ पलायन्ते न शक्तास्ते सेव-
न्ते कृतचाटवः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—विषयदन्तिनः निर्वासनम् हरिम् दृष्ट्वा न शक्तः (सन्तः) तूष्णीम् पलायन्ते ते कृतचाटवः सेवन्ते ॥ ४६ ॥

अर्थः—वासनारहित पुरुषरूप सिंहको देखकर विषयरूपी हस्ती असमर्थ होकर चुप्पचाप भाग जाते हैं, और तिस वासनारहित पुरुषको आकर्षित होकर स्वयं सेवन करते हैं ॥ ४६ ॥

न मुक्तिकारिकां धत्ते निःशंको युक्त-
मानसः॥पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जि-
घ्रन्नश्नन्नास्ते यथासुखम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—निःशङ्कः युक्तमानसः (ज्ञानी) मुक्तिका-

रिकां न धत्ते; (किन्तु) पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् यथासुखम् आस्ते ॥ ४७ ॥

अर्थः—निःशङ्क और निश्चलमनवाला ज्ञानी यम-नियम-आदि योगक्रियाको आग्रहसे नहीं करता है, किन्तु देखताहुआ, सुनताहुआ, स्पर्श करताहुआ, सूँघताहुआ और भोजन करताहुआ भी आत्मसुखके विषेही निमग्न रहै है ॥ ४७॥

वस्तुश्रवणमात्रेण शुद्धबुद्धिर्निराकुलः ॥ नैवाचारमनाचारमौदास्यं वा न पश्यति ॥ ४८ ॥

अन्वयः—वस्तुश्रवणमात्रेण शुद्धबुद्धिः निराकुलः (ज्ञानी) आचारम् अनाचारम् वा औदास्यम् न एव पश्यति ॥ ४८॥

अर्थः—गुरु और वेदान्त वाक्योंके द्वारा चैतन्यस्वरूप आत्माके श्रवणमात्रसे हुआ है परिपूर्ण आत्माका साक्षात्कार जिसको, और निराकुल अर्थात् अपने स्वरूपके विषे स्थित ज्ञानी आचारको वा अनाचारको अथवा उदासीनता इनकी ओर दृष्टि नहीं देता है, क्योंकि वह ब्रह्माकार होय है॥ ४८ ॥

यदा यत्कर्त्तुमायाति तदा तत्कुरुते

ऋजुः ॥ शुभं वाप्यशुभं वापि तस्य
चेष्टा हि बालवत् ॥ ४९ ॥

अन्वयः—यदा यत् वा-अपि शुभम् अपि-वा अशुभम् कर्त्तुम् आयाति तदा तत् ऋजुः (सन्) कुरुते (यतः) हि तस्य चेष्टा बालवत् (भवति) ॥ ४९ ॥

अर्थः—जब जो शुभ अथवा अशुभ कर्म्म प्रारब्धानुसार करना पड़ै है, उसको आग्रहरहित होकर करै है, क्योंकि तिस जीवन्मुक्त ज्ञानीकी चेष्टा बालककी समान होय है, अर्थात् वह प्रारब्धानुसार कर्म्म करै है रागद्वेषसे नहीं करै है ॥ ४९ ॥

स्वातन्त्र्यात्सुखमाप्नोतिस्वातन्त्र्या-
ल्लभते परम् ॥ स्वातन्त्र्यान्निर्वृतिं
गच्छेत्स्वातन्त्र्यात्परमं पदम् ॥ ५० ॥

अन्वयः—स्वातन्त्र्यात् सुखम् आप्नोति, स्वातन्त्र्यात् परम् लभते, स्वातन्त्र्यात् निर्वृतिम् गच्छेत्, स्वातन्त्र्यात् परमम् पदम् (प्राप्नुयात्) ॥ ५० ॥

अर्थः—रागद्वेषरहित पुरुष सुखको प्राप्त होता है, परम ज्ञानको प्राप्त होता है, और नित्य सुखको प्राप्त होय है, तथा आत्मस्वरूपके विषे विश्रामको प्राप्त होय है ॥ ५० ॥

अकर्तृत्वमभोक्तृत्वं स्वात्मनो मन्यते यदा ॥ तदा क्षीणा भवन्त्येव समस्ता श्चित्तवृत्तयः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—यदा स्वात्मनः अकर्तृत्वम् अभोक्तृत्वम् मन्यते तदा एव (अस्य) समस्ताः चित्तवृत्तयः क्षीणाः भवन्ति ॥ ५१ ॥

अर्थः—जब पुरुष अपने विषे कर्त्तापनेका और भोक्तापनेका अभिमान त्याग देय है, तब ही उस पुरुषकी सम्पूर्ण चित्तकी वृत्ति क्षीण होजाती है ॥ ५१ ॥

उच्छृङ्खलाप्यकृतिका स्थितिर्धीरस्य राजते ॥ न तु सस्पृहचित्तस्य शांतिर्मूढस्य कृत्रिमा ॥ ५२ ॥

अन्वयः—धीरस्य उच्छृङ्खला अपि अकृतिका स्थितिः राजते; सस्पृहचित्तस्य मूढस्य कृत्रिमा शांतिः तु न (राजते) ॥ ५२ ॥

अर्थः—जो पुरुष निःस्पृहाचित्त होय उस धैर्यवान् ज्ञानीकी स्वाभाविक शान्तिरहित भी स्थिति शोभायमान होती है, और इच्छाकरके आकुल है चित्त जिसका ऐसे अज्ञानी पुरुषकी बनावटकी शान्ति शोभित नहीं होती है ॥ ५२ ॥

विलसंति महाभोगैर्विशान्ति गिरिग-

ह्वरान् । निरस्तकल्पना धीरा अबद्धा मुक्तबुद्धयः ॥ ५३ ॥

अन्वयः—अबद्धाः मुक्तबुद्धयः निरस्तकल्पनाः धीराः महाभोगैः विलसंति गिरिगह्वरान् विशन्ति ॥ ५ ॥
अर्थः—जिन ज्ञानियोंकी कल्पना निवृत्त होगई है, जो आसक्तिरहित हैं, तथा जिनकी बुद्धि अभिमान-रहित है वह ज्ञानी पुरुष कभी प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए भोगोंसे विलास करते हैं, और कभी प्रारब्धानु-सार पर्वत और वनोंके विषे विचरते हैं ॥ ५ ॥

श्रोत्रियं देवतां तीर्थमङ्गनां भूपतिं प्रियम् । दृष्ट्वा सम्पूज्य धीरस्य न कापि हृदि वासना ॥ ५४ ॥

अन्वयः—श्रोत्रियम् देवताम् तीर्थम् सम्पूज्य (तथा) अङ्गनान् भूपतिम् प्रियम् दृष्ट्वा धीरस्य हृदि का-अपि वासना न (जायते) ॥ ५४ ॥

अर्थः—वेदपाठी ब्राह्मण, और देवताकी प्रतिमा, तथा तीर्थका पूजन करके और सुन्दर स्त्री-राजा-और प्रिय पुत्रादिको देखकर भी ज्ञानीके हृदयमें कोई वासना नहीं उत्पन्न होती है ॥ ५४ ॥

भृत्यैः पुत्रैः कलत्रैश्च दौहित्रैश्चापि

गोत्रजैः ॥ विहस्य धिक्कृतो योगी न
याति विकृतिं मनाक् ॥ ५५ ॥

अन्वयः--योगी भृत्यैः पुत्रैः कलत्रैः दौहित्रैः च अपि च गोत्रजैः विहस्य धिक्कृतः (अपि) मनाक् विकृतिम् न याति ॥ ५५ ॥

अर्थः--सेवक--पुत्र-स्त्री-दौहित्र (धेवते)-और अन्य गोत्रके पुरुष भी यदि योगीका उपहास करैं; या धिक्कार दैं तौ उसका मन किञ्चिन्मात्र भी क्षोभको नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, उसज्ञानीका मोह दूर होजाताहै ॥५५॥

सन्तुष्टोऽपि न सन्तुष्टः खिन्नोऽपि न
च खिद्यते ॥ तस्याश्चर्य्यदशां तां तां
तादृशा एव जानते ॥ ५६ ॥

अन्वयः (योगी) सन्तुष्टः अपि सन्तुष्टः न (भवति); खिन्नः अपि च न खिद्यते; तस्य तां तां तादृशाम् आश्चर्य्यदशाम् तादृशाः एव जानते ॥ ५६ ॥

अर्थः--ज्ञानी लोकदृष्टि करके सन्तोषयुक्त दीख-ता हुआ भी सन्तोषयुक्त नहीं होता है, और लोक-दृष्टिसे खिन्न दीखत हुआ भी नहीं खिन्न होता है, ज्ञानीकी इसप्रकारकी दशाको ज्ञानीही जानते हैं ॥५६॥

कर्त्तव्यतैव संसारो न तां पश्यन्ति

सूरयः ॥ शून्याकारा निराकारा निर्वि-
कारा निरामयाः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—संसारः कर्त्तव्यता-एव शून्याकाराः निरा-
काराः निर्विकाराः निरामयाः सूरयः ताम् न
पश्यन्ति ॥ ५७ ॥

अर्थः—कर्त्तव्यता कहिये मेरा यह कर्त्तव्य है इसप्रका-
रका जो कार्य्यका संकल्प है सोई संसार है. परन्तु
सम्पूर्ण विश्वके नाश होनेपर भी जो वर्त्तमान रहैं हैं, और
जो निराकार कहिये घटादिकेसे आकार करके रहित हैं,
और जो सर्वत्र आत्मदृष्टि करनेवाले तथा संकल्प
विकल्प रूपी रोग करके रहित हैं; वह कदापि कर्त्त-
व्यताको नहीं देखैं हैं अर्थात् किसी कार्य्यके करनेका
संकल्प नहीं करैं हैं ॥ ५७॥

अकुर्वन्नपि संक्षोभाद्व्यग्रः सर्वत्र मूढ-
धीः ॥ कुर्वन्नपि तु कृत्यानि कुशलो
हि निराकुलः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—मूढधीः अकुर्वन्-अपि सर्वत्र संक्षोभात्
व्यग्रः (भवति); हि कुशलः तु कृत्यानि कुर्वन्-अपि
निराकुलः (भवति) ॥ ५८ ॥

अर्थः—अज्ञानी पुरुष कर्मोंको न करताहुआ भी
सर्वत्र संकल्प विकल्प करनेके कारण व्यग्र रहता है,

और ज्ञानी कार्य्योंको करताहुआ भी निर्विकारचित्त रहता है क्योंकि वह तो आत्मसुखके विषे विराजमान होय है ॥ ५८ ॥

सुखमास्ते सुखं शेते सुखमायाति याति च॥ सुखं वक्ति सुखं भुंक्ते व्यवहारेऽपि शान्तधीः ॥ ५९ ॥

अन्वयः—शान्तधीः व्यवहारे अपि सुखम् आस्ते; सुखम् शेते; सुखम् आयाति; (सुखम्) च याति; सुखम् वक्ति, सुखम् भुंक्ते ॥ ५९ ॥

अर्थः—प्रारब्धके अनुसार व्यवहारकेविषे वर्त्तमान भी आत्मनिष्ठा बुद्धिवाला ज्ञानी सुखपूर्वक बैठता है, सुखपूर्वक शयन करता है, सुखपूर्वक आता है, और सुखपूर्वकही जाता है, सुखपूर्वक कहता है, तथा सुखपूर्वकही भोजन करता है अर्थात् सम्पूर्ण इन्द्रियोंके व्यापारको करै हैं, परन्तु आसक्त नहीं होय है क्योंकि उसका चित्त तो ब्रह्माकार होय है ॥ ५९ ॥

स्वभावाद्यस्य नैवार्तिर्लोकवद्व्यवहारिणः ॥ महाह्रद इवाक्षोभ्यो गतक्लेशः स शोभते ॥ ६० ॥

अन्वयः—व्यवहारिणः यस्य स्वभावात् लोकवत्

अर्थः—व्यवहार करतेहुएभी ज्ञानीको स्वभावसेही संसारी पुरुषकी समान खेद नहीं होय है, किन्तु वह ज्ञानी बड़े जलके सरोवरकी समान चलायमान नहीं होय है और निर्विकारस्वरूपमें शोभायमान होय है ॥ ६० ॥

निवृत्तिरपि मूढस्य प्रवृत्तिरुपजायते ॥ प्रवृत्तिरपि धीरस्य निवृत्तिफलभागिनी ॥ ६१ ॥

अन्वयः—मूढस्य निवृत्तिः अपि प्रवृत्तिः उपजायते धीरस्य प्रवृत्तिः अपि निवृत्तिफलभागिनी (भवति) ॥६१॥

अर्थः—मूढकी निवृत्ति कहिये बाह्येन्द्रियोंको विषयोंसे निवृत्ति करनाभी प्रवृत्तिरूपही होय है, क्योंकि उसके अहंकारआदि दूर नहीं होय हैं,, और ज्ञानीकी सांसारिक व्यवहारमें प्रवृत्तिभी निवृत्तिरूपही होय है, क्योंकि ज्ञानीको 'अहंकरोमि' ऐसे अभिमान नहीं होय है ॥ ६१ ॥

परिग्रहेषु वैराग्यं प्रायोमूढस्य दृश्यते । देहे विगलिताशस्य क रागः क विरागता ॥ ६२ ॥

अन्वयः—मूढस्य प्रायः परिग्रहेषु वैराग्यम् दृश्यते;

देहे विगलिताशस्य क्व रागः (स्यात्) क्व विरागिता (स्यात्) ॥ ६२ ॥

अर्थः—जो मूर्ख देहाभिमानीपुरुष है वही मोक्षकी इच्छा करके धन, धाम, स्त्री, पुत्रादिकोंका त्याग करै है, और जिसका देहाभिमान दूर होगया है ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानीपुरुषका स्त्री पुत्रादिके विषे राग होय है, न विराग होय है ॥ ६२ ॥

भावनाभावनासक्ता दृष्टिर्मूढस्य सर्वदा । भाव्यभावनया सा तु स्वस्थस्यादृष्टरूपिणी ॥ ६३ ॥

अन्वयः--मूढस्य दृष्टिः सर्वदा भावनाभावना सक्ता (भवति) स्वस्थस्य तु सा भाव्यभावनया अदृष्ट रूपिणी (भवति) ॥ ६३ ॥

अर्थः--मूर्ख देहाभिमानी पुरुषकी दृष्टि सर्वदा संकल्प और विकल्पके विषे आसक्त होय है, और आत्म स्वरूपके विषे स्थित ज्ञानीकी दृष्टि यद्यपि संकल्प विकल्पयुक्तसी दीखै है, परन्तु तथापि संकल्प विकल्पके लेपसे शुद्ध रहै है, क्योंकि ज्ञानीको 'अहंकरोमि' ऐसा अभिमान नहीं होय है ॥ ६३ ॥

तहाँ वादी शंका करै है कि, यदि ज्ञानी संकल्पविकल्प करके क्रिया करै है तौ उसकी द्वैतबुद्धि क्यों नहीं होय है? तिसका समाधान करते हैं कि—

सर्वारम्भेषु निष्कामो यश्चरेद्बालव-
न्मुनिः ॥ न लेपस्तस्य शुद्धस्य क्रि-
यमाणेऽपिकर्म्मणि ॥ ६४ ॥

अन्वयः—यः मुनिः बालवत् सर्वारम्भेषु निष्कामः चरेत् तस्य शुद्धस्य कर्म्मणि क्रियमाणे अपि लेपः न (भवति) ॥ ६४ ॥

अर्थः—जो ज्ञानीपुरुष बालककी समान निष्काम-होकर प्रारब्धानुसार प्राप्तहुए कर्म्मोंके विषे प्रवृत्त होता है, उस निरहंकार ज्ञानीको कर्म्मकरनेपरभी कर्त्तृत्वका दोष नहीं लगता है, क्योंकि उसको तो कर्त्तापनेका अभिमानही नहीं होता है ॥ ६४ ॥

स एव धन्य आत्मज्ञः सर्वभावेषु यः
समः ॥ पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्न-
न्निस्तर्षमानसः ॥ ६५ ॥

अन्वयः—सः एव आत्मज्ञः धन्यः यः सर्वभावेषु समः (भवति अत एव सः) पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् (अपि) निस्तर्षमानसः (भवति) ॥ ६५ ॥

अर्थः—वही धैर्य्यवान् ज्ञानी धन्य है, जो सम्पूर्ण भावोंमें समान बुद्धि रखता है, इसकारणही वह, देखता हुआ, श्रवण करता हुआ स्पर्श करता हुआ, सूँघता

हुआ, और भोजन करता हुआभी सबप्रकारकी तृष्णारहित मनवाला होता है ॥ ६५ ॥

क्क संसारः क्क चाभासः क्क साध्यं क्क चसाधनम् । आकाशस्येव धीरस्य निर्विकल्पस्य सर्वदा ॥ ६६ ॥

अर्थः—आकाशस्य, इव सर्वदा निर्विकल्पस्य धीरस्य संसारः क्क आभासः च क्क साध्यम् क्क साधनम् च क्क ॥ ६६ ॥

अर्थः—जो धैर्य्यवान् ज्ञानी है, वह सम्पूर्ण सङ्कल्पविकल्परहित होता है, उसको संसार कहाँ? और संसारका भान कहाँ, और स्वर्गादि साध्य कहाँ, तथा यज्ञआदि साधन कहाँ? क्योंकि वह सदा आकाशवत् निर्लेप और कल्पनारहित होता है ॥ ६६ ॥

स जयत्यर्थसंन्यासी पूर्णस्वरसविग्रहः । अकृत्रिमोऽनवच्छिन्ने समाधिर्यस्य वर्त्तते ॥ ६७ ॥

अन्वयः—पूर्णस्वरसविग्रहः सः अर्थसंन्यासी जयति यस्य अनवच्छिन्ने अकृत्रिमः समाधिः वर्त्तते ॥ ६७ ॥

अर्थः—वह पूर्णस्वभाववाला है स्वरूप जिसका ऐसे अर्थ कहिये दृष्ट और अदृष्टफलको त्यागनेवालेकी

जय (सर्वोपरि उन्नति) होतीहै, जिसका पूर्ण स्वरूप आत्माकेविषे स्वाभाविक समाधि होता है ॥ ६७॥

ज्ञानी पुरुषके अनेकप्रकारके लक्षण हैं उनका पूर्णरीतिसे तौ वर्णन करना कठिन है, परन्तु ज्ञानी पुरुषका एक साधारण लक्षण यह है कि-

बहुनात्र किमुक्तेन ज्ञाततत्त्वो महाशय: । भोगमोक्षनिराकाङ्क्षी सदासर्वत्र नीरसः ॥ ६८ ॥

अन्वयः-अत्र बहुना उक्तेन किम्? (यतः) ज्ञाततत्त्वः महाशयः भोगमोक्षनिराकांक्षी सदा सर्वत्र नीरसः (भवति) ॥ ६८ ॥

अर्थः-यहाँ ज्ञानीके बहुत लक्षण कहनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है. केवल साधारण लक्षण यह है कि, ज्ञानी आत्मतत्त्वका जाननेवाला, आत्मस्वरूपकेविषे मग्न, भोग और मोक्षकी इच्छा करके रहित, तथा सदा याग आदि साधनोंकेविषे प्रीति न करनेवाला होता है ॥६८॥

महदादिजगद्वैतं नाममात्रविजृम्भितम् ॥ विहाय शुद्धबोधस्य किंकृत्यमवशिष्यते ॥ ६९ ॥

अन्वयः-द्वैतम् नाममात्रविजृम्भितम् महदादि जगत् विहाय शुद्धबोधस्य किम् कृत्यम् अवशिष्यते ॥ ६९ ॥

अर्थः—द्वैतरूपसे भासनेवाले, नाममात्रही भिन्न-रूपसे भासमान, महतत्त्व आदि जगत्के विषे कल्प-नाको दूरकरके स्वप्रकाश चैतन्यस्वरूप ज्ञानीको क्या कोई कार्य्य करना बाकी रहता है ? अर्थात् कोई कार्य्य नहीं रहता है ॥ ६९ ॥

भ्रमभूतमिदं सर्वं किञ्चिन्नास्तीति निश्चयी ॥ अलक्ष्यस्फुरणः शुद्धः स्व-भावेनैव शाम्यति ॥ ७० ॥

अन्वयः—इदम् सर्वम् भ्रमभूतम् (परमार्थतः) किञ्चित् न अस्ति इति निश्चयी अलक्ष्यस्फुरणः शुद्धः स्वभावेन एव शाम्यति ॥ ७० ॥

अर्थः—अधिष्ठानका साक्षात्कार होनेपर, यह सम्पूर्ण विश्व भ्रममात्रहै, परमार्थदृष्टिसे कुछभी नहीं है, इसप्रकार जिसको निश्चयहुआहै और स्वप्रकाश चेतनस्वरूप तथा स्वरूपके साक्षात्कारसे दूर होगया है अज्ञानरूप मल जिसका ऐसा ज्ञानी स्वभावसेही शान्तिको प्राप्त होता है ॥ ७० ॥

शुद्धस्फुरणरूपस्य दृश्यभावमप-श्यतः । क्व विधिः क्व च वैराग्यं क्व त्यागः क्व शमोऽपिवा ॥ ७१ ॥

अन्वयः—शुद्धस्फुरणरूपस्य दृश्यभावम् अपश्यतः (ज्ञानिनः) विधिः क्व वैराग्यम् क्व त्यागः क्व अपि वा शमः च क्व ॥ ७१ ॥

अर्थः—शुद्धस्फुरणरूप अर्थात् स्वप्रकाश चेतन स्वरूप और दृश्यपदार्थोंको भी न देखनेवाले ज्ञानीको किसी कर्म्मके करनेकी विधि कहाँ? और विषयोंसे वैराग्य कहाँ? और त्याग कहाँ? तथा शान्ति भी करना कहाँ? यह सब तो जब होसकै हैं तब सांसारिक पदार्थोंकेविषे दृष्टि होय है ॥ ७१ ॥

स्फुरतोऽनन्तरूपेण प्रकृतिं च न
पश्यतः। क्व बन्धः क्व चवा मोक्षः क्व
हर्षः क्व विषादता ॥ ७२ ॥

अन्वयः—अनन्तरूपेण स्फुरतः प्रकृतिम् च न पश्यतः (ज्ञानिनः) बन्धः क्व मोक्षः क्व हर्षः क्व वा विषादता च क्व ॥ ७२ ॥

अर्थः—जो ज्ञानी है वह अनन्तरूप करके भासता है और आत्माको जानताहै, और देहआदिकेविषे दृष्टि नहीं लगाता है, उसको संसारका बन्धन नहीं होता है, मोक्षकी इच्छा नहीं होती है, हर्ष नहीं होता है और विषादभी नहीं होता है ॥ ७२ ॥

बुद्धिपर्य्यन्तसंसारे मायामात्रं विव-

र्त्तते । निर्ममो निरहंकारो निष्कामः
शोभते बुधः ॥ ७३ ॥

अन्वयः—बुद्धिपर्य्यन्तसंसारे मायामात्रम् विवर्त्तते (अतः) बुधः निर्ममः निरहङ्कारः निष्कामः शोभते॥७३॥

अर्थः—यह जगत् अज्ञानकरके भासै है, और ज्ञानकरके जब माया मात्र (अज्ञान) निवृत्त होजाय है तब ज्ञानस्वरूप आत्माही शेष रहे है इसकारण ज्ञानीको इससंसारमें ममता-अहंकार-तथा-इच्छा नहीं होय है, इसकारण ब्रह्माकारवृत्ति करके अत्यन्त शोभायमान होय है ॥ ७३ ॥

अक्षयं गतसन्तापमात्मानं पश्यतो
मुनेः । क्व विद्या क्व च वा विश्वं क्व देहो
ऽहं ममेतिवा ॥ ७४ ॥

अन्वयः--अक्षयम् गतसन्तापम् आत्मानम् पश्यतः मुनेः विद्या क्व वा विश्वम् क्व देहः वा अहम्-मम-इति च क्व ॥ ७४ ॥

अर्थः—अविनाशी सन्तापरहित ऐसे आत्मस्वरूपका जिसको ज्ञान हुआहै ऐसे ज्ञानीको विद्या (शास्त्र) कहाँ ? और विश्व कहाँ ? और देह कहाँ, तथा अहं मम भाव कहाँ ? क्योंकि उसको आत्मासे भिन्न अन्य स्फुरण ही नहीं होय है ॥ ७४ ॥

निरोधादीनि कर्म्माणि जहाति जड-
धीर्यदि। मनोरथान्प्रलापांश्च कर्त्तु-
माप्नोत्यतत्क्षणात्॥ ७५॥

अन्वयः—जडधीः यदि निरोधादीनि कर्म्माणि जहाति (तर्हि) अतत्क्षणात् मनोरथान् प्रलापान् च कर्त्तुम् आप्नोति ॥ ७५ ॥

अर्थः—जो मूढ़बुद्धि देहाभिमानी पुरुष है वह अति परिश्रम करके मनका निरोध करे है, परन्तु निरोध समाधिके छूटतेही उसका मन फिर तुरन्तही अनेकप्रकारके संकल्प विकल्प करने लगता है, और प्रलाप आदि सम्पूर्ण व्यापारोंको करने लगै है इस-कारण ज्ञानकेविना निरोध कुछ काम नहीं देताहै॥७५॥

मन्दः श्रुत्वापि तद्वस्तु न जहाति वि-
मूढताम्। निर्विकल्पो बहिर्यत्नाद-
न्तर्विषयलालसः॥ ७६॥

अन्वयः—मन्दः तत्-वस्तु श्रुत्वा-अपि विमूढताम् न जहाति (अतः मूढः) यत्नात् बहिः निर्वि-कल्पः अन्तः विषयलालसः (भवति) ॥ ७६ ॥

अर्थः—जो देहाभिमानी मूढ़ पुरुष है वह वेदान्त-शास्त्रके अनेक ग्रन्थोंके द्वारा आत्मस्वरूपको सुन-

कर भी देहाभिमानको नहीं त्यागता है. यद्यपि अति परिश्रम करके ऊपरसे त्याग दिखावै है, परन्तु मनमें अनेक विषयवासना रहैं हैं ॥ ७६ ॥

ज्ञानाद्गलितकर्म्मा यो लोकदृष्ट्यापि कर्मकृत् । नाप्नोत्यवसरं कर्त्तुं वक्तुमेव न किञ्चन ॥ ७७ ॥

अन्वयः—यः ज्ञानात् गलितकर्म्मा (सः) लोकदृष्ट्या, कर्म्मकृत् अपि किञ्चन कर्तुम् न वक्तुम् एव (च) अवसरम् न आप्नोति ॥ ७७ ॥

अर्थः—ज्ञानी लोकाचारके अनुसार कर्म्म करे है परन्तु ज्ञानके प्रतापसे कर्म्मफलकी इच्छा नहीं करता है, क्योंकि वह केवल आत्मस्वरूपकेविषे लीन रहता है तिससे उसको कर्म्म करनेका अथवा कहनेका अवसर नहीं मिलता है ॥ ७७ ॥

क्व तमः क्व प्रकाशो वा हानं क्व च न किञ्चन । निर्विकारस्य धीरस्य निरातङ्कस्य सर्वदा ॥ ७८ ॥

अन्वयः—सर्वदा निरातंकस्य निर्विकारस्य धीरस्य, तमः, क्व, वा प्रकाशः क्व हानम् च क्व (तस्य) किञ्चन न (भवति) ॥ ७८ ॥

अर्थः—जो ज्ञानी है वह निर्विकार होता है. उसको कालआदिका भय नहीं होय है. उसको अन्धकारका भान नहीं होता है, प्रकाशका भान नहीं होता है, उसको किसी बातकी हानि नहीं होती है, भय नहीं होता है, वह सर्वदा मुक्त होता है ॥ ७८ ॥

क्व धैर्य्यं क्व विवेकित्वं क्व निरातंकता पिवा॥ अनिर्वाच्यस्वभावस्य निःस्व-भावस्य योगिनः ॥ ७९ ॥

अन्वयः—अनिर्वाच्यस्वभावस्य निःस्वभावस्य-योगिनः धैर्य्यम् क्व विवेकित्वम् क्व अपि च निरातङ्कता क्व ॥ ७९ ॥

अर्थः—ज्ञानीका स्वभाव किसीके ध्यानमें नहीं आता है, क्योंकि ज्ञानी स्वभावरहित होता है, उसको धीरजपना, ज्ञानीपना, तथा निर्भयपना नहीं होताहै ॥ ७९ ॥

न स्वर्गो नैव नरको जीवन्मुक्तिर्नचैव हि। बहुनात्र किमुक्तेन योगदृष्ट्यान किञ्चन ॥ ८० ॥

अन्वयः—अत्र बहुना उक्तेन किम्; योगदृष्ट्या स्वर्गः न नरकः न एव हि जीवन्मुक्तिः च, एव न किञ्चन न (भवति) ॥ ८० ॥

अर्थः—जिस ज्ञानीकी सर्वत्र आत्मदृष्टि हो जाती है,

उसको स्वर्ग, नरक और मुक्ति आदिका भेद नहीं होता है अर्थात् अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन है, ज्ञानीपुरुषको किसीप्रकारकाभी भेद नहीं भासता है ॥ ८० ॥

नैवं प्रार्थयते लाभं नालाभेनानुशोचति । धीरस्य शीतलं चित्तममृतेनैव पूरितम् ॥ ८१ ॥

अन्वयः—(धीरः) लाभम् प्रार्थयते न एवम् अलाभेन अनुशोचति न (अतः) धीरस्य चित्तम् अमृतेन पूरितम् शीतलम् एव (भवति) ॥ ८१ ॥

अर्थः—जो ज्ञानी है वह लाभकी इच्छा नहीं करताहै, और लाभ नहीं होय तो शोक नहीं करता है, इसकारणही धैर्यवान् ज्ञानीका चित्त ज्ञानामृतसे परिपूर्ण और इस कारणही शीतल कहिये तापत्रयरहित होता है ॥ ८२ ॥

न शान्तं स्तौति निष्कामो न दुष्टमपि निन्दति । समदुःखसुखस्तृप्तः किञ्चित्कृत्यं न पश्यति ॥ ८२ ॥

अन्वयः—निष्कामः शान्तम् न स्तौति; दुष्टम् अपि न निन्दति; तृप्त (सन्) समदुःखसुखः (भवति) (निष्कामत्वात्) किञ्चित् कृत्यम् न पश्यति ॥ ८२ ॥

अर्थः—जो पुरुष कामनाशून्य ज्ञानी है वह किसी शान्त पुरुषको देखकर प्रशंसा नहीं करता है और दुष्टको

देखकर निन्दा नहीं करता है. क्योंकि वह अपने ज्ञानरूपी अमृतसे तृप्त होताहै तिसकारण सुखदुःखकी कल्पना नहीं करताहै, तथा किसी कृत्यको देखै नहीं है ॥ ८२ ॥

धीरो न द्वेष्टि संसारमात्मानं न दिदृक्षति। हर्षामर्षविनिर्मुक्तो न मृतो न च जीवति ॥ ८३ ॥

अन्वयः—हर्षामर्षविनिर्मुक्तः धीरः संसारम् न द्वेष्टि; आत्मानम् न दिदृक्षति; न मृतः(भवति);न च जीवति८३

अर्थः--जो धैर्य्यवान् अर्थात् ज्ञानी है वह संसारका द्वेष नहीं करता है, तथा आत्माको देखनेकी इच्छा नहीं करता है, क्योंकि वह स्वयंही आत्मस्वरूप है, इसकारण उसको हर्ष तथा शोक नहीं होताहै; और जन्ममरणरहित होता है ॥ ८३ ॥

निःस्नेहः पुत्रदारादौ निष्कामो विषयेषु च। निश्चिन्त स्वशरीरेऽपि निराशः शोभते बुधः ॥ ८४ ॥

अन्वयः--पुत्रदारादौ निःस्नेहः, विषयेषु च निष्कामः; स्वशरीरे अपि निश्चिन्तः; निराशः; बुधः शोभते ॥८४॥

अर्थः--पुत्र स्त्री आदिके विषे प्रीति न करनेवाला, विषयोंके भोगकी इच्छारहित, और अपने शरीरके

विषेभी भोजनादिककी चिन्ता न करनेवाला, इसप्रकार सर्वत्र आशारहित ज्ञानी शोभाको प्राप्त होताहै ॥ ८४ ॥

तुष्टिः सर्वत्र धीरस्य यथा पतितवर्ति-नः । स्वच्छदं चरतो देशान्यत्रास्त मितशायिन ॥ ८५ ॥

अन्वयः–यत्रास्तमितशायिनः देशान् स्वच्छन्दम्, चरतः, यथापतितवर्तिनः धीरस्य सर्वत्र तुष्टिः (भवति) ॥ ८५ ॥

अर्थः–जो ज्ञानीपुरुष है, उसको जो कुछ प्रारब्धानु-सार मिलजाय उससेही वर्ताव करै है, और परमसन्तोष-को प्राप्त होयहै, तदनन्तर अपनी दृष्टि जिधरको उठ-जाय उनही देशोंमें विचरै है, और जहाँही सूर्य्य अस्त होय तहाँही शयन करै है ॥ ८५ ॥

पततूदेतु वा देहो नास्य चिन्ता महा त्मनः ॥ स्वभावभूमिविश्रान्तिविस्मृ-ताशेषसंसृतेः ॥ ८६ ॥

अन्वयः--देहःपततुवाऽदेतु, स्वभावभूमिविश्रान्तिवि-स्मृताशेषसंसृतेः महात्मनः अस्य चिन्ता न (भवति) ८६

अर्थः–देह नष्ट होय अथवा रहै, परन्तु अपने स्वरू-परूपी भूमिके विश्रामकरके संम्पूर्ण संसारको भूलने-वाले ज्ञानीको इसदेहकी चिन्ता नहीं होती है ॥ ८६ ॥

अकिञ्चनः कामचारो निर्द्वन्द्वश्छिन्नसंशयः। असक्तः सर्वभावेषु केवलो रमते बुधः॥ ८७॥

अन्वयः—अकिञ्चनः कामचारः निर्द्वन्द्वः छिन्नसंशयः सर्वभावेषु असक्तः बुधः केवलः रमते॥ ८७॥

अर्थः—जो ज्ञानी है वह इकलाही आत्मस्वरूपके विषे रमैहै, कुछ पास नहीं रक्खै है, तथापि अपनी इच्छानुसार वर्त्ता करै है, सुखदुःखसे रहित होय है, ज्ञानीको संशय नहीं होयहै, और सम्पूर्णविषयोंसे विरक्त रहै है॥ ८७॥

निर्ममः शोभते धीरः समलोष्टाश्मकाञ्चनः। सुभिन्नहृदयग्रन्थिर्विनिर्धूतरजस्तमः॥ ८८॥

अन्वय—निर्ममः समलोष्टाश्मकाञ्चनः सुभिन्नहृदयग्रन्थिः विनिर्धूतरजस्तमः धीरः शोभते॥ ८८॥

अर्थः—ममताका त्यागनेवाला, मट्टी, पत्थर और सुवर्णको समान माननेवाला, और दूर होगई है हृदयकी अज्ञानरूपग्रन्थि जिसकी ऐसा और दूर होगये हैं रज और तमगुण जिसके ऐसा ज्ञानी शोभाको प्राप्त होताहै८८

सर्वत्रानवधानस्य न किञ्चिद्वासना हृदि। मुक्तात्मानो वितृप्तस्य तुलना केनजायते॥ ८९॥

अन्वयः-सर्वत्र अनवधानस्य हृदि किञ्चित् वासना न (भवति); (अतः) मुक्तात्मनःवितृप्तस्य (तस्य,) केन तुलना जायते ॥ ८९ ॥

अर्थः-जिस सम्पूर्णविषयोंमें आसक्ति नहीं है, और जिसके हृदयके विषे किञ्चिन्मात्रभी वासना नहीं है और जो आत्मानन्दकेविषे तृप्त है, ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानीपुरुषकी समान त्रिलोकीमें कौन हो सक्ता है ? ॥ ८९ ॥

जानन्नपि न जानाति पश्यन्नपि न पश्यति । ब्रुवन्नपि न च ब्रूते कोऽन्यो निर्वासनादृते ॥ ९० ॥

अन्वयः-(यः) जानन् अपि न जानाति, पश्यन् अपि न पश्यति, ब्रुवन् अपि च न ब्रूते; (सः) निर्वासनात् ऋते अन्यः कः ? ॥ ९० ॥

अर्थः-जो जानताहुआभी नहीं जानताहै, देखताहुआभी नहीं देखताहै, बोलताहुआभी नहीं बोलताहै, ऐसा पुरुष ज्ञानीके सिवाय जगत्में और दूसरा कौन है ? अर्थात् कोई नहीं है; क्योंकि ज्ञानीको अभिमान तथा वासना नहीं होयहै ॥ ९० ॥

भिक्षुर्वा भूपतिर्वापि यो निष्कामः

स शोभते। भावेषु गलिता यस्य शो-
भनाशोभनामतिः ॥ ९१ ॥

अन्वयः--यस्य भावेषु शोभनाशोभना मतिः गलिता, (एतादृशः यः) निष्कामः सः भिक्षुः वा अपि वा भूपतिः शोभते ॥ ९१ ॥

अर्थः--जिसज्ञानीकी शुभ पदार्थोंमें इच्छाबुद्धि नहीं होतीहै और अशुभपदार्थोंमें द्वेषबुद्धि नहीं होती है, ऐसा जो कामनारहित ज्ञानी है वह राजा हो तौ विदेह (जनक) की समान शोभित होताहै, और भिक्षु होय तो परम ब्रह्मनिष्ठ जो याज्ञवल्क्यमुनिकी समान शोभाको प्राप्त होता है, क्योंकि आत्मानन्दके विषे मग्न पुरुषको राज्य बन्धन नहीं करता है और त्याग मोक्षदायक नहीं होता है ॥ ९१ ॥

क्व स्वाच्छन्द्यं क्व संकोचः क्व वा तत्त्व-
विनिश्चयः । निर्व्याजार्जवभूतस्य
चरितार्थस्य योगिनः ॥ ९२ ॥

अन्वयः- निर्व्याजार्जवभूतस्य चरितार्थस्य योगिनः स्वाच्छन्द्यम् क्व सङ्कोचः क्व वा तत्त्वविनिश्चयः क्व॥ ९२॥

अर्थः--जिस पुरुषका मन कपटरहित और कोमलता युक्त है, और जिसने आत्मज्ञानरूपी कार्य्यको सिद्ध करा है, ऐसे जीवन्मुक्त पुरुषको स्वाधीनपना

नहीं होता है, और पराधीनपनाभी नहीं होता है तत्त्वका निश्चय करनाभी नहीं होता है, क्योंकि उसका देहाभिमान दूर हो जाता है ॥ ९२ ॥

आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेन गता-
र्त्तिना। अन्तर्यदनुभूयेत तत्कथं कस्य
कथ्यते ॥ ९३ ॥

अन्वयः—आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेन गतार्त्तिना (ज्ञानिना) अन्तः यत् अनुभूयेत, तत् कथम् कस्य कथ्यते ॥ ९३ ॥

अर्थः—जो पुरुष आत्मस्वरूपके विषे विश्रामरूप अमृतका पान करके तृप्त हुआ है, और आशामात्र निवृत्त होगई है, तथा जिसके भीतरकी पीड़ा शान्त होगई है ऐसा ज्ञानी अपने अन्तःकरणके विषे जो अनुभव करै है, उसको प्राणी किसप्रकार कह सक्ता है और उस अनुभवको किसका कहा जाय? क्योंकि इसका अधिकारी दुर्लभ है ॥ ९३ ॥

सुप्तोऽपि न सुषुप्तौ च स्वप्नेऽपि शायि-
तो नच। जागरेऽपि न जागर्ति धीर-
स्तृप्तः पदे पदे ॥ ९४ ॥

अन्वयः—पदे पदे तृप्त धीरः सुषुप्तौ अपि च न सुप्तः, स्वप्ने अपि च न शयितः; जागरे अपि न जागर्ति ॥९४॥

अर्थः-ज्ञानीको सुषुप्ति अवस्था दीखै है परन्तु ज्ञानी सुषुप्तिके वशीभूत नहीं होय है, स्वप्नावस्था भासे है परंतु ज्ञानी शयन नहीं करै है किन्तु साक्षीरूप रहै है और जाग्रत् अवस्था भासै है परन्तु ज्ञानी जाग्रत् अवस्थाके विकारोंसे अलग रहा, क्योंकि यह तौ न अवस्था बुद्धिकी है और जो बुद्धिसे पर है और आत्मानन्दसे तृप्त है ॥ ९४ ॥

ज्ञः सचिन्तोऽपि निश्चिन्तः सेन्द्रियो
ऽपि निरिन्द्रियः। सुबुद्धिरपि निर्बुद्धिः
साहङ्कारोऽनहंकृती ॥ ९५ ॥

अन्वयः-ज्ञः सचिन्तःअपि निश्चिन्तः (भवति;) सेन्द्रियः अपि निरिन्द्रियः (भवति); सुबुद्धिः अपि निर्बुद्धिः (भवति); साहंकारः अपि निरहङ्कृतिः (भवति); ॥ ९५ ॥

अर्थः-ज्ञानीको चिन्ता है ऐसा लोकोंके देखनेमें आवै परन्तु ज्ञानी निश्चिन्त होय है, ज्ञानी इन्द्रियों-सहित दीखै है वास्तवमें ज्ञानी इन्द्रियरहित होय है व्यवहारमें चतुर बुद्धिवाला दीखै है, परन्तु बुद्धि-रहित होय है, और अहंकारयुक्तसा दीखै है परन्तु ज्ञानीको अहंकारका लेशभी नहीं होय है ॥ ९५ ॥

न सुखी न च वा दुःखी न विरक्तो न

सङ्गवान् । न मुमुक्षुर्न वा मुक्तो न किञ्चिन्न च किञ्चन ॥ ९६ ॥

अन्वयः-(ज्ञानी) न सुखी; वा न च दुःखी; न विरक्तः; न सङ्गवान्; न मुमुक्षुः वा न मुक्तः; न किञ्चित्; न च किञ्चन ॥ ९६ ॥

अर्थः-ज्ञानी सुखी नहीं होता है, दुःखी नहीं होता है, विरक्त नहीं होता है, आसक्त नहीं होता है, मोक्षकी इच्छा नहीं करता है, मुक्त नहीं होता है, सत्रूप, अनिर्वचनीय होता है ॥ ९६ ॥

विक्षेपेऽपि न विक्षिप्तः समाधौ न समाधिमान् । जाड्येऽपि न जडो धन्यः पाण्डित्येऽपि न पण्डितः ॥ ९७ ॥

अन्वयः-धन्यः विक्षेपे अपि विक्षिप्तः न; समाधौ समाधिमान् न; जाड्ये अपि जडः न; पाण्डित्ये अपि पण्डितः न ॥ ९७ ॥

अर्थः-ज्ञानीका विक्षेप दीखै है परन्तु ज्ञानी विक्षिप्त नहीं होय है, ज्ञानीकी समाधि दीखै है परन्तु ज्ञानी समाधि नहीं करै है, ज्ञानीके विषे जड़पना दीखै है परन्तु ज्ञानी जड़ नहीं होय है, तथा ज्ञानीमें पण्डित-पना दीखै है परन्तु ज्ञानी पण्डित नहीं होय है, क्योंकि यह सम्पूर्ण विकार देहाभिमानीकेविषे रहते हैं ॥ ९७ ॥

मुक्तो यथास्थितिस्वस्थः कृतकर्त्तव्य-
निर्वृतः। समः सर्वत्र वैतृष्ण्यान्न स्मर
त्यकृतं कृतम् ॥ ९८ ॥

अन्वयः—यथास्थितिस्वस्थः कृतकर्त्तव्यनिर्वृतः सर्व-
त्र मुक्तः वैतृष्ण्यात् कृतम् अकृतम् न स्मरति ॥ ९८ ॥

अर्थः—जैसी अवस्था प्राप्त होय उसमेंही स्वस्थ रहनेवाला; और करे हुए और कर्त्तव्य कर्म्मोंकेविषे अहंकार और उद्वेग न करनेवाला अर्थात् सन्तोषयुक्त, तथा सर्वत्र आत्मदृष्टि करनेवाला जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष तृष्णाके न होनेसे, यह कार्य्य करा, यह नहीं करा ऐसा स्मरण नहीं करै है ॥ ९८ ॥

न प्रीयते वन्द्यमानो निंद्यमानो न
कुप्यति। नैवोद्विजति मरणे जीवने
नाभिनन्दति ॥ ९९ ॥

अन्वयः—(ज्ञानी) वंद्यमानः प्रीयते न; निन्द्यमानः कुप्यति न; मरणे उद्विजति न; एव जीवने अभि-
नन्दति न ॥ ९९ ॥

अर्थः—जो ज्ञानी है उसकी कोई प्रशंसा करै तौ प्रसन्न नहीं होता है, और निन्दा करै तौ कोप नहीं करता है, तिसीप्रकार मृत्युभी सामने आता दीखै तौ ज्ञानी घबड़ाता नहीं है और बहुत वर्षोंपर्य्यन्त जियै तौ प्रसन्न नहीं होता है ॥ ९९ ॥

न धावति जनाकीर्णं नारण्यमुपशा-
न्तधीः ॥ यथातथा यत्रतत्र सम एवा-
वतिष्ठते ॥ १०० ॥

अन्वयः--उपशान्तधीः जनाकीर्णम् न धावति, (तथा) अरण्यम् न (धावति;) किन्तु यत्र तत्र यथा तथा समः एव अवतिष्ठते ॥ १०० ॥

अर्थः—जिस ज्ञानीकी वृत्ति शान्त होगई है, वह जहाँ मनुष्योंकी सभा होय तहाँ जानेकी इच्छा नहीं करै है; तिसीप्रकार निर्जनस्थान जो वन तहाँभी जानेकी इच्छा नहीं करै है; किन्तु जिस समय जो स्थान मिलजाय तहाँही स्थिति करके निवास करै है, क्योंकि नगरमें तथा वनमें ज्ञानीकी एक समान बुद्धि होय है, अर्थात् ज्ञानीकी दृष्टिमें जैसा नगर होय है वैसाही वन होय है ॥ १०० ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां
मुरादाबादनिवासिपण्डितरामस्वरूपशर्म्मविर
चितया भाषाटीकया सहितं शान्तिशतकं
नामाष्टादशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशतिकं प्रकरणम् १९.

श्रीगुरुके मुखसे साधनसहित ज्ञानका श्रवण करके शिष्यको आत्मस्वरूपके विषे विश्राम प्राप्त

हुआ, तिसका सुख आठ श्लोकों करके वर्णन करै हैं–

तत्त्वविज्ञानसंदंशमादाय हृदयोद-
रात्। नानाविधपरामर्शशल्योद्धारः
कृतो मया ॥ १ ॥

अन्वयः–मया हृदयोदरात् तत्त्वविज्ञानसंदंशम् आदाय नानाविध परामर्शशल्योद्धारः कृतः ॥ १ ॥

अर्थः -हे गुरो ! आपसे तत्त्वज्ञानरूप सांडसीको लेकर अपने हृदयमेंसे नाना प्रकारके सङ्कल्प विकल्परूप काँटेको दूर कर दिया ॥ १ ॥

क्व धर्म्मः क्व च वा कामः क्वचार्थः क्व
विवेकिता । क्व द्वैतं क्व च वाद्वैतं
स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥ २ ॥

अन्वयः–स्वमहिम्नि स्थितस्य मे धर्म्मः क्व; वा कामः च क्व; अर्थः क्व; विवेकिता च क्व; द्वैतम् क्व; वा अद्वैतम् च क्व ॥ २ ॥

अर्थः–हे गुरो ! धर्म्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन चारोंका फल तुच्छ है, इसकारण तिन धर्म्मादिरूप काँटेको दूरकरके आत्मस्वरूपके विषे स्थितिको प्राप्तहुआ जो मैं तिस मुझे द्वैत नहीं भासै है. इसकारणही मुझे अद्वैतविचारभी नहीं करना पड़ै है, क्योंकि "उत्तीर्णे तु परे पारे नौकायाः किं प्रयोजनम्" जब परली पार

उतरगए तो फिर नौकाकी क्या आवश्यकता है ? इस-कारण जब द्वैतका भानही नहीं है तो फिर अद्वैतविचार करनेसे फलही क्या ? ॥ २ ॥

क्व भूतं क्व भविष्यद्वा वर्त्तमानमपि क्व वा । क्व देशः क्व च वा नित्यं स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥ ३ ॥

अन्वयः—नित्यम् स्वमहिम्नि स्थितस्य मे भूतम् क्व वा भविष्यत् क्व, अपि वा वर्त्तमानम् क्व, देशः क्व, (अन्यत्) च वा क्व ॥ ३ ॥

अर्थः—नित्य आत्मस्वरूपकेविषे स्थित जो मैं तिस मुझे भूतकाल कहाँ है, भविष्यत्-काल कहाँ है, वर्तमान-काल कहाँ है, देश कहाँ है,तथा अन्यवस्तु कहाँ है॥३॥

क्वचात्मा क्व च वा नात्मा क्व शुभं क्वा शुभं तथा । क्व चिन्ता क्व च वाचिन्ता स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥ ४ ॥

अन्वयः—स्वमहिम्नि स्थितस्य मे आत्मा क्व वा अनात्मा च क्व, शुभम् क्व तथा अशुभम् क्व, चिन्ता क्व वा अचिन्ता च क्व ॥ ४ ॥

अर्थः—आत्मस्वरूपके विषे स्थित जो मैं तिस मुझे आत्मा, अनात्मा, शुभ, अशुभ, चिन्ता और अचिन्ता यह नानाप्रकार भेद नहीं भासें हैं ॥ ४ ॥

क्व स्वप्नः क्व सुषुप्तिर्वा क्व च जागरणं तथा॥ क्व तुरीयं भयं वापि स्वमहिम्नि स्थितस्य मे॥५॥

अन्वयः—स्वमहिम्नि स्थितस्य मे स्वप्नः क्व वा सुषुप्तिः च क्व, तथा जागरणम् क्व, तुरीयम् अपि वा भयम् क्व॥५॥

अर्थः—आत्मस्वरूपके विषे स्थित जो मैं तिस मेरी स्वप्नावस्था नहीं होय है, सुषुप्ति अवस्था नहीं है, तथा जाग्रत् अवस्था नहीं होय है; क्योंकि यह तीनों अवस्था बुद्धिकी हैं, आत्माकी नहीं हैं. मेरी तुरीय वस्थाभी नहीं होय है, तथा अंतःकरणधर्म्म जो भय-आदि सोभी मुझे नहीं होय हैं॥५॥

क्व दूरं क्व समीपं वा बाह्यं क्वाभ्यन्तरं क्व वा। क्व स्थूलं क्व च वा सूक्ष्मं स्वमहिम्नि स्थितस्य मे॥६॥

अन्वयः—स्वमहिम्नि स्थितस्य मे दूरम् क्व वा समीपम् क्व, बाह्यं क्व वा आभ्यन्तरं क्व, स्थूलम् क्व वा सूक्ष्मं च क्व ६

अर्थः--दूरपना, समीपपना, बाहरपना, भीतरपना, मोटापना तथा सूक्ष्मपना यह सब मेरेविषे नहीं हैं, क्योंकि मैं तौ सर्वव्यापी आत्मस्वरूपमें स्थित हूँ॥६॥

क्व मृत्युर्जीवितं वा क्व लोकाः क्वास्य

क लौकिकम् । क लयः क समाधिर्वा
स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥ ७ ॥

अन्वयः—स्वमहिम्नि स्थितस्य अस्य मे मृत्युः क, जीवितम् क, लोकाः क वा लौकिकम् क, लयः क वा समाधिः क ॥ ७ ॥

अर्थः—आत्मस्वरूपकेविषे स्थित जो मैं तिस मेरा मरण नहीं होय है, जीवन नहीं होय है, क्योंकि मैं तो त्रिकालमें सत्यरूप हूँ, केवल आत्मामात्रको देखनेवाला जो मैं तिस मुझे भू—आदिलोकोंकी प्राप्ति नहीं होयहै, इसीकारण मुझे कोई लौकिककार्य्यभी कर्त्तव्य नहीं है; मैं पूर्णात्मा हूँ, इसकारण मेरा लय वा समाधि नहीं होय है ॥ ७ ॥

अलं त्रिवर्गकथया योगस्य कथया-
प्यलम् । अलं विज्ञानकथया विश्रा-
न्तस्य ममात्मनि ॥ ८ ॥

अन्वयः—आत्मनि विश्रान्तस्य मम त्रिवर्गकथया योगस्य कथया अलम् विज्ञानकथया अपि अलम् ॥ ८ ॥

अर्थः—आत्माकेविषे विश्रामको प्राप्तहुआ जो मैं तिस मुझे धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्गकी चर्चासे कुछ प्रयोजन नहीं है, योगकी चर्चा करकै कुछ प्रयोजन नहीं है, तथा ज्ञानकी चर्चा करकैभी कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ८ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिकृतायां ब्रह्मविद्यायां भाषया सहितैकोनविंशतिकं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १९ ॥

अथ विंशतिकं प्रकरणम् २०.

पूर्ववर्णन करीहुई आत्मस्थिति जिसकी होजाय उस जीवन्मुक्तकी दशाका इसप्रकरणमें चौदह श्लोकोंकरकै वर्णन करैं हैं कि–

क्व भूतानि क्व देहो वा क्वेन्द्रियाणि क्व वा मनः। क्व शून्यं क्व च नैराश्यं मत्स्वरूपे निरञ्जने ॥ १ ॥

अन्वयः–निरञ्जने मत्स्वरूपे भूतानि क्व वा देहः क्व, इन्द्रियाणि क्व वा मनः क्व, शून्यम् क्व, नैराश्यम् च क्व॥१॥

अर्थः–हे गुरो ! मैं सम्पूर्ण उपाधिरहित हूँ, इसकारण मेरेविषे पञ्चमहाभूत तथा देह तथा इन्द्रियें तथा मन नहीं है, क्योंकि मैं चेतनस्वरूप हूँ, तिसीप्रकार शून्यपना और निराशपनाभी नहीं है ॥ १ ॥

क्व शास्त्रं क्वात्मविज्ञानं क्व वा निर्विषयं मनः। क्व तृप्तिः क्व वितृष्णात्वं गतद्वन्द्वस्य मे सदा ॥ २ ॥

अन्वयः–सदा गतद्वन्द्वस्य मे शास्त्रम् क्व, आत्मविज्ञानम् क्व, वा निर्विषयम् मनः क्व, तृप्तिः क्व, वितृष्णात्वम् क्व ॥ २ ॥

अर्थः–शास्त्राभ्यास करना, आत्मज्ञानका विचार करना, मनको जीतना, मनमें तृप्ति रखना और

तृष्णाको दूर करना, यह कोईभी मेरेमें नहीं हैं, क्योंकि मैं द्वन्द्वरहित हूँ ॥ २ ॥

क्व विद्या क्व च वाविद्या क्वाहं क्वेदं मम क्व वा ॥ क्व बन्धः क्व च वा मोक्षः स्वरूपस्य क्व रूपिता ॥ ३ ॥

अन्वयः—(मयि) विद्या क्व वा अविद्या च क्व, अहम् क्व इदम् क्व वा मम क्व, बन्धः क्व वा मोक्षः च क्व, स्वरूपस्य रूपिता क्व ॥ ३ ॥

अर्थः—अहंकाररहित जो मैं हूँ तिस मेरेविषे विद्या अविद्या मैं हूँ, मेरा है, यह है, इत्यादि अभिमानके धर्म्म नहीं है, तथा वस्तुका ज्ञान मेरेविषे नहीं है, और बन्ध मोक्ष मेरे नहीं होय हैं, मेरा रूपभी नहीं है; क्योंकि मैं चैतन्यमात्र हूँ ॥ ३ ॥

क्व प्रारब्धानि कर्म्माणि जीवन्मुक्ति रपि क्व वा । क्व तद्विदेहकैवल्यं निर्विशेषस्य सर्वदा ॥ ४ ॥

अन्वयः—सर्वदा निर्विशेषस्य (मे) प्रारब्धानि कर्म्माणि क्व, वा जीवन्मुक्तिः अपि क्व, तद्विदेहकैवल्यम् क्व ॥ ४ ॥

अर्थः—सर्वदा निर्विशेषस्वरूप जो मैं तिस मेरे प्रारब्धकर्म्म नहीं होय है, और जीवन्मुक्ति, अवस्था तथा विदेहमुक्तिभी नहीं होय है, क्योंकि मैं सर्वधर्म्मरहितहूँ ॥४॥

क कर्त्ता क्व च वा भोक्ता निष्क्रियं स्फुरणं क्व वा। क्वापरोक्षं फलं वा क्व निःस्वभावस्य मे सदा ॥५॥

अन्वयः—सदा निःस्वभावस्य मे कर्त्ता क्व वा भोक्ता क्व वा निष्क्रियम् स्फुरणम् क्व, अपरोक्षम् क्व वा फलम् क्व॥५॥

अर्थः—मैं सदा स्वभावरहित हूँ, इसकारण मेरेविषे कर्त्तापना नहीं है, भोक्तापना नहीं है, मनका क्रियारहित स्फुरणपना नहीं है, वृत्तिरूप ज्ञान नहीं है, तथा विषयाकारवृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यरूपफल नहीं है ॥५॥

क्व लोकः क्व मुमुक्षुर्वा क्व योगी ज्ञानवान् क्व वा। क्व बद्धः क्व च वा मुक्तः स्वस्वरूपेऽहमद्वये ॥६॥

अन्वयः—अहमद्वये स्वस्वरूपे लोकः क्व वा मुमुक्षुः क्व, योगी क्व, ज्ञानवान् क्व, बद्धः क्व वा मुक्तः च क्व ॥६॥

अर्थः—आत्मरूप-अद्वैत-स्वस्वरूपके होनेपर न लोक है, न मोक्षकी इच्छा करनेवालाहूँ, न योगीहूँ, न ज्ञानीहूँ, न बन्धन है न मुक्ति है ॥६॥

क्व सृष्टिः क्व च संहारः क्व साध्यं क्व च साधनम्। क्व साधकः क्व सिद्धिर्वा स्वस्वरूपेऽहमद्वये ॥७॥

अन्वयः—अहम्-अद्वये स्वस्वरूपे सृष्टिः क्व, संहारः

च क्व, साध्यम् क्व, साधनम् च क्व, साधकः क्व वा सिद्धिः क्व ॥ ७ ॥

अर्थः—आत्मरूप-अद्वैत स्वस्वरूपके होनेपर न सृष्टि है,न कार्य्य है, न साधन है, न साधक है, और न सिद्धि है, क्योंकि सर्वधर्म्मरहितहूँ ॥ ७ ॥

क्व प्रमाता प्रमाणं वा क्व प्रमेयं क्व च
प्रमा । क्व किञ्चित्क्व न किञ्चिद्वा
सर्वदा विमलस्य मे ॥ ८ ॥

अन्वयः—सर्वदा विमलस्य मे प्रमाणम् वा प्रमाता क्व प्रमेय क्व प्रमा च क्व किञ्चित् क्व न किञ्चित् क्व ॥८॥

अर्थः—आत्मा उपाधिरहित है, तिस आत्माके विषे प्रमाता, प्रमाण तथा प्रमेय यह तीनों नहीं हैं और कुछ है अथवा कुछ नहीं है, ऐसी कल्पनाभी नहीं है॥८॥

क्व विक्षेपः क्व चैकाग्र्यं क्व निर्बोधः
क्व मूढता । क्व हर्षः क्व विषादो वा
सर्वदा निष्क्रियस्य मे ॥ ९ ॥

अन्वयः—सर्वदा निष्क्रियस्य मे विक्षेपः क्व ऐकाग्र्यं च क्व निर्बोधः क्व मूढता क्व हर्षः क्व विषादः क्व ॥ ९ ॥

अर्थः—मैं सदा निर्विकारआत्मस्वरूपहूँ, इसकारण मेरेविषे विक्षेप तथा एकाग्रता, ज्ञानीपना, मूढ़ता, हर्ष और विषाद यह विकार नहीं हैं ॥ ९ ॥

क्वैष व्यवहारो वा क्व च सा परमार्थता । क्व सुखं क्व च वा दुःखं निर्विमर्शस्य मे सदा ॥ १० ॥

अन्वयः—सदा निर्विमर्शस्य मे एषः व्यवहारः क्व वा सा परमार्थता च क्व, सुखं च क्व वा दुःखं च क्वः॥१०॥

अर्थ—मैं सदा सङ्कल्पविकल्परहित आत्मस्वरूप हूँ, इसकारण मेरेविषे व्यवहारावस्था नहीं है, परमार्थावस्था नहीं है और सुख नहीं है तथा दुःख भी नहीं है ॥ १० ॥

क्व माया क्व च संसारः क्व प्रीतिर्विरतिः क्व वा । क्व जीवः क्व च तद्ब्रह्म सर्वदा विमलस्य मे ॥ ११ ॥

अन्वयः—सर्वदा विमलस्य मे माया क्व संसारः च क्व प्रीतिः क्व वा विरतिः क्व जीवः क्व तत् ब्रह्म च क्व ॥११॥

अर्थः—मैं सदा शुद्ध उपाधिरहित आत्मस्वरूपहूँ, इसकारण मेरेविषे माया नहीं है, संसार नहीं है, प्रीति नहीं है, वैराग्य नहीं है, जीवभाव नहीं है, तथा ब्रह्मभावभी नहीं है ॥ ११ ॥

क्व प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा क्व मुक्तिः क्व च बन्धनम् ॥ कूटस्थनिर्विभागस्य स्वस्थस्य मम सर्वदा ॥ १२ ॥

अन्वयः—कूटस्थनिर्विभागस्य सदा स्वस्थस्य मम प्रवृत्तिः क्व वा निवृत्तिः क्व, मुक्तिः क्व, बन्धनम् च क्व ॥१२॥

अर्थः—निर्विकार भेदरहित कूटस्थ और सर्वदा स्वस्थ आत्मस्वरूप जो मैं हूँ तिस मेरेविषे प्रवृत्ति नहीं है, मुक्ति नहीं, तथा बन्धन नहीं है ॥ १२ ॥

क्वोपदेशः क्व वा शास्त्रं क्व शिष्यः क्व च वा गुरुः। क्वचास्ति पुरुषार्थो वा निरुपाधेः शिवस्य मे ॥ १३ ॥

अन्वयः—निरुपाधेः शिवस्य मे उपदेशः क्व वा शास्त्रं क्व, शिष्यः क्व वा गुरुः क्व वा पुरुषार्थः च क्व अस्ति ॥ १३ ॥

अर्थः—उपाधिशून्य नित्यानन्दस्वरूप जो मैं हूँ तिस मेरे अर्थ उपदेश नहीं है, शास्त्र नहीं है, शिष्य नहीं है, गुरु नहीं है तथा परमपुरुषार्थ जो मोक्ष सोभी नहीं है ॥ १३ ॥

क्वचास्ति क्वच वा नास्ति क्वास्ति चैकं क्वच द्वयम्। बहुनात्र किमुक्तेन किञ्चिन्नोत्तिष्ठते मम ॥ १४ ॥

अन्वयः—(मम) आस्ति च क्व, वा न अस्ति च क्व; एकं च क्व अस्थि, द्वयं च क्व; इह बहुना उक्तेन किम्, मम किञ्चित् न उत्तिष्ठते ॥ १४ ॥

अर्थः-मैं आत्मस्वरूपहूँ इसकारण मेरेविषे अस्तिपना नहीं है, नास्तिपना नहीं है, एकपना नहीं है, द्वैतपना नहीं है. इसप्रकार कल्पितपदार्थोंकी वार्त्ता करोड़ों वर्षोंपर्यन्त कहूँ तबभी हार नहीं मिलसक्ता, इसकारण संक्षेपसे कहताहूँ कि, मेरेविषे किसी कल्पनाकाभी आभास नहीं होय है, क्योंकि मैं एकरस चेतनस्वरूपहूँ ॥ १४ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषासहितं विंशतिकं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २० ॥

अथैकविंशतिकं प्रकरणम् २१.

अब ग्रन्थकर्ता इसप्रकरणमें ग्रन्थकी श्लोकसंख्या और विषय दिखाये हैं-

दश षट् चोपदेशे स्युः श्लोकाश्च पञ्चविंशतिः। सत्यात्मानुभवोल्लासे उपदेशे चतुर्दश ॥१॥ षडुल्लासे लये चैवोपदेशे च चतुश्चतुः। पञ्चकं स्यादनुभवे बन्धमोक्षे चतुष्ककम् ॥ २ ॥ निर्वेदोपशमे ज्ञाने एवमेवाष्टकं भवेत्। यथासुखं सप्तकञ्च शान्तौ स्याद्वेदसंमितम् ॥ ३ ॥ तत्त्वोपदेशे विंशच्च

दश ज्ञानोपदेशके । तत्त्वस्वरूपे विं-
शच्च शमे च शतकं भवेत् ॥ ४ ॥ अष्ट-
कं चात्मविश्रान्तौ जीवन्मुक्तौ चतु
र्दश । षट् संख्याक्रमविज्ञाने ग्रन्थैका-
त्म्यं ततः परम् ॥ ५ ॥ विंशत्येकामि-
तैः खण्डैः श्लोकैरात्माग्निमध्यखैः ।
अवधूतानुभूतेश्च श्लोकाः संख्याक्रमा
अमी ॥ ६ ॥

अन्वयः—उपदेशे दश षट्-च स्युः । सत्यात्मानुभवो-
ल्लासे च पञ्चविंशतिः । उपदेशे चतुर्दश । (चतुर्थे) उ-
ल्लासे षट् । लये च उपदेशे च एव चतुश्चतुः । अनुभवे
पञ्चकम् । बन्धमोक्षे चतुष्ककं स्यात् । निर्वेदोपशमे
एवं एव ज्ञाने अष्टकम् भवेत् । यथा सुखे च सप्तकम् ।
शान्तौ च वेदसंमितं स्यात् । तत्त्वोपदेशे विंशत् ।
ज्ञानोपदेशके च दश । तत्त्वस्वरूपे च विंशत् । शमे च
शतकम् भवेत् । आत्मविश्रान्तौ च अष्टकम् । जीवन्मुक्तौ
चतुर्दश । संख्याक्रमविज्ञाने षट् । ततः परम् आत्माग्नि-
मध्यखैः श्लोकै विंशत्येकामितैः च खण्डैः ग्रन्थैकात्म्यम्
(भवति) । अमी श्लोकाः अवधूतानुभूतेः संख्याक्रमाः
(कथिताः) ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अर्थः—गुरूपदेशनामक प्रथमप्रकरणमें १६ श्लोक हैं। शिष्यानुभवनामक द्वितीयप्रकरणमें २० श्लोक हैं। आक्षेपोपदेशनामक तृतीयप्रकरणमें १४ श्लोक हैं। शिष्यानुभवनामक चतुर्थप्रकरणमें ६ श्लोक हैं। लय-नामक पंचमप्रकरणमें ४ श्लोक हैं। गुरूपदेशनामक षष्ठप्रकरणमेंभी ४ श्लोक हैं। शिष्यानुभवनामक सप्तमप्रकरणमें ५ श्लोक हैं। बन्धमोक्षनामक अष्टमप्र-करणमें ४ श्लोक हैं। निर्वेदनामक नवमप्रकरणमें ८ श्लोक हैं। उपशमनामक दशमप्रकरणमें ८ श्लोक हैं। ज्ञानाष्टकनामक ग्यारहवें प्रकरणमें ८ श्लोक हैं। एव मेवाष्टकनाम द्वादशवें प्रकरणमें ८ श्लोक हैं। यथा-सुखनामक त्रयोदशवें प्रकरणमें ७ श्लोक हैं। शान्ति-चतुष्कनामक चतुर्दशवें प्रकरणमें ४ श्लोक हैं। तत्त्वोपदेशनामक पन्द्रहवें प्रकरणमें २० श्लोक हैं। ज्ञानोपदेशनामक सोलहवें प्रकरणमें १० श्लोक हैं। तत्त्वस्वरूपनामक सत्रहवें प्रकरणमें २० श्लोक हैं शमनामक अठारहवें प्रकरणमें १०० श्लोक हैं। आत्म-विश्रान्तिनामक उन्नीसवें प्रकरणमें ८ श्लोक हैं। जीव-न्मुक्तिनामक बीसवें प्रकरणमें १४ श्लोक हैं। और संख्याक्रमविज्ञाननामक इक्कीसवें प्रकरणमें ६ श्लोक

हैं । और सम्पूर्णग्रन्थमें इक्कीस प्रकरण और ३०२ श्लोक हैं । इसप्रकार अवधूतका अनुभवरूप जो "अष्टावक्रगीता" है उसके श्लोकोंकी संख्याका क्रम कहा । यद्यपि अन्तके श्लोककरके सहित ३०३ श्लोक हैं; परन्तु दशमपुरुषकी समान यह श्लोक अपनेको छोड़कर अन्यश्लोकोंकी गणना करता है ॥ १-६ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादनिवासिभारद्वाजगोत्रोद्भवभोलानाथात्मजपण्डितरामस्वरूपकृतसान्वयभाषाटीकयासहितं संख्याक्रमव्याख्यानं नामैकविंशतिकं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २१ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना, खेतवाड़ी-बंबई.